


199

~~1887.~~

1884

नाम - शुद्धिसर्वेस्वम

लेखक - श्री राम मिश्र

प्रकाशक - अम्बिका चतर्जी
प्रेस बनारस

काशीस्थ लोगों की तरफ़ से शास्त्री जी को पत्र

॥ श्रीः ॥

सम्वत् १९४१ मिति वैशाख शुक्ल प्रतिपदा शनिवार

श्रीमत्सुपण्डित प्रवर श्रीराममिश्र शास्त्रिषु सबहुमानं निवेदनम् ॥

एक पुस्तक किसीने शूद्र पर्यन्त समस्त वर्ण का दशाहाशौच मुख्य है इस पर लिखा है और जिस व्यवस्था में हम नें सर्व वर्ण का भिन्न भिन्न आशौच सिद्धान्त किया था उस व्यवस्था पर मनमाने दोष भी लिखे हैं औ॰ निज देश के निर्णयामृत मदनरत्नादि गौड़ ग्रन्थों को छोड़ के मनमानी व्यवस्था लिखी है सो अब यह नवीन व्यवस्था आप के पास परीक्षा के अर्थ भेजी जाती है और आशा है कि आप अपने परम उदार स्वभाव से वादी प्रतिवादी को समान दृष्टि से निरीक्षण करेंगे औ॰ यथार्थ इस पुस्तक के गुण दोष परीक्षण करके लिखेंगे क्योंकि इस समय में आपही ऐसे शास्त्रसंबंधि गुरुतर कार्य के भार उठाने में समर्थ हैं किमधिकं विज्ञेषु ॥

श्री १०८ जम्बू काश्मीराद्यनेकदेशाध्यक्ष का आश्रित आप का अकृत्रिम मित्र श्री पण्डित नित्यानन्द मीमांसक औ॰ धर्मसंरक्षक काशीस्थ विद्वन्मंडली ॥

इस पत्र के पानेसे श्रीराममिश्र शास्त्रीजी ने सोलह कोटि वैदिक मतानुयायी लोगों के संरक्षण मे परिकर किया, धन्य है शास्त्रीजी जिनके परमोदार चरित हैं ॥





भूमिका

विश्वेश्वरो विजयती तराम्

ओ३म्

थोड़े दिन व्यतीत भए कि श्रीकाशी जी में किसी विशेष निमित्त से यह विचार उपस्थित भया कि ब्राह्मणादि चार वर्ण का आशौच समान है अथवा कुछ उस में विशेष है इस प्रश्न पर किसी धनिक के स्थान में श्रीनित्यानन्द मीमांसक ने यह सिद्धान्त किया कि मन्वादि महर्षियों के वचनानुसार ब्राह्मण का दशाहाशौच क्षत्रिय का द्वादशाह औ॰ वैश्य का पञ्चदशाह और शूद्र का मासाशौच है इसपर किसी पण्डित ने कहा कि नहीं सर्व वर्ण का दशाह पक्ष भी है परंतु दशाह औ॰ शातिस्विकाशौच बराबर है तथापि कलि में तो श्रीगरुड़ जी महाराज के वाक्यानुसार सर्व वर्ण का दशाहही मुख्य है बस इसी बात पर यह शास्त्रार्थ चला और जो काशी की अथवा काशीही की क्या सर्वही देश की चाल है कि कैसीही अपकृष्ट बात क्यों न होय नये शौकीनशिकारी और द्रव्य के स्वीकारी इस अपकृष्ट पक्ष पर भी खड़े होगये और यह छोटीसी बात बड़ी करके अनभिज्ञ लोगों के चित्त में शहर के महात्मा लोगों ने ल्यादई और महाजन लोग वेचारे सूदका हिसाब करनेवाले वे क्या जाने उस्ताद लोगोंकी उस्तादी यह तो वही मसल भई कि "उलटा चोर कोतवाल को दण्डे" जो पञ्चाङ्ग का काम करते हैं और रोज कोठी में जयरहे करने जाते हैं उन के द्वारा यह खबर कर दी कि

दशाह ही का पक्ष श्रीगरुड़ जी ने कलिकाल में कहा है बस
धर्म्मलोप आरम्भ भया इसी पर व्यवस्था बनने लगी रुपया बटने
लगा गुहार भई गंगापारतक के लोग सोटा लेले के जुटगये
और कहने लगे कि एक समय पर आप हमारे औ० अब हम
आपकी ॥ हमे धर्मा धर्म का कुछ विचार नहीहै हम तो केवल
अपनी टेक पर रहते हैं औ जो हमारी मदत करता है उस्को म-
दत में तन मन धन अर्पण करदेतेहैं क्या हमे वे दिन याद नही
आते कि आपने हमारे कहनेपर धर्मा धर्म लोक वेद सर्व को तिला-
ञ्जलि देकर हमारी बात का समर्थन किया अब यह व्यवस्था 'श्रुति
स्मृतीतिहास पुराण लोक शिष्ट संप्रदाय से विरुद्ध क्यों न होय
हम तो आपही का पक्ष समर्थन करैंगे औ० ऐसे जब तक नही क-
रेंगे तबतक आपके उपकार से कैसा निर्मुक्त हो सकते हैं धर्म तो
परलोक मे फल देता है औ मित्र तो सन्मुख उपस्थित है उससे
मुख कैसे छिपावें: ल्यावो एक नही ऐसी ऐसी शत व्यवस्था पर एक
क्षण मे हस्ताक्षर करदें ! औ० यह भी श्रीमुख से कहने लगे कि साहब
"जमात करामांत" आपलोग जो लिखदेंगे वही धर्म होजायगा
हम, आप भी तो इस समय ऋषि मुनि हैं चार दिन अधिक अथ-
वा न्यून जो कह देंगे वही होजायगा औ० सूतक की बात तो केवल
रिवाज पर है कौन देख आया है कि वैश्य को दशदिन का आ-
शौच नही होता हमारे यहा तो सूतक मानतेही नही वस्तुतः
सूतक कोई बात नहीहै, शोकका केवल निशानहै इसै जहां तक
बने वहां तक न्यूनही करना उचित है आजसे इस्को बंद करा

शुद्धिसर्वस्वम् ।

कोई विचार की बात नहीं है यह तो धर्म की बात है कुछ कचहरी की तो है नहीं जैसा कहो वैसाही हो जाय औ॰ हम लोगों को इस समय एक होना उचित है परन्तु इस अवसर पर श्री १०८ काशीनरेश के सभा पण्डितऔर धर्म के हितकारी श्री चतुर्भुज शास्त्री राज पौराणिक महाराज किसी निमित्त से आगए और जब लोगों ने इनसे हस्ताक्षर के अर्थ प्रार्थना करी तब कहने लगे कि भाई देखो यह बड़ा धोखा का स्थान है इस व्यवस्था पर मैं तो श्रीकाशीनरेश स्थापित परम प्रसिद्ध धर्म-सभा के विद्वान् लोगों की सम्मति के बिना हस्ताक्षर नहीं करूंगा और यह भी कहने लगे कि यह सभा कैसी है इसमें परम प्रसिद्ध श्रीब्रह्मामृतवर्षिणीसभा के मुख्याधिकारी श्रीराममिश्र शास्त्री जी जो कि इस शास्त्रार्थ में मध्यस्थ माने गये वे नहीं देख पड़ते हैं नतो जगत्ख्यात कीर्त्ति श्रीबापूदेव शास्त्री जी यहां आए नतो प्रसिद्ध विद्वान् श्रीतांत्याशास्त्री दामोदर शास्त्री गंगाधर शास्त्री तथा अपर सुप्रसिद्ध पञ्चद्रविड़ विद्वान् आये श्रीकैलासचन्द्र शिरोमणि भट्टाचार्य जी कि अद्वितीय विद्वान हैं वेभी नहीं देखपड़ते अधिक क्या यहां तो सरयूपारिशिरोमणि काशिराज सभा भूषण श्रीकुबेरपति तिवारी जी भी नहीं आये हैं औ॰ पंचगौड़ तथा पंचद्र-

विड़ के कोई भी मान्य व्यक्ति नही देखपड़ती कैसी हम इसे सभा जाने इधर तो यह गहन धर्म विचार औ॰ इधर यह नव्ययुवकमंडली हम इन की प्रार्थना पर यदि हस्ताचर करै धर्म विलुप्त होजाय यह विचार करके शास्त्री जी ने स्पष्ट कह दिया कि भाई यह सोलह कोटि वैदिक मतानुयायी लोगों की व्यवस्था है इसपर प्रथम काशी के प्रधान विद्वान लोग औ॰ धर्म सभा औ॰ ब्रह्मामृत वर्षिणी सभा के प्रतिष्ठित पंडित हस्ताचर करैं औ॰ महामान्य श्री १०८ काशी नरेश तथा प्रत्येक जाति के प्रसिद्ध पुरुष के हस्ताचर इस व्यवस्था पर आवश्यक है जैसे श्रीभारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी तथा राजा श्रीशंभु नारायण सिंह जी सुप्रसिद्ध श्रीबाबू प्रमदा दास मित्र महाशय इत्यादि मान्य काशी के रईस लोगों की संमति के अनन्तर मेरी संमति होगी मेरी वृद्धावस्था में मुझे इस व्यवस्था पर हस्ताचर करना उचित नही है यह कहके चले आये औ॰ लोगों ने बहुत कुछ इनका आदर सत्कार प्रार्थना अनुनयबिनय किया परंतु ये तो प्रसिद्धधार्मिक (श्रीचतुर्भुजजी थे) एक बात इनने वैदिक धर्म के विरुद्ध न सुनी औं॰ लोगों नें बहुत चाहा कि शास्त्रीजी को धोखा दें परन्तु ये तो चले आएं, औ॰ सुननेमें आया कि श्रीकाशी-नरेश इनको इस धर्म परायणता को श्रवण करके बड़े प्रसन्न भए क्यों न होय हैं तो काशीनरेश यदि महाराज धर्म सम्मान न करैं तो कौनकरै ।

यह समस्त कथा जब श्रीभारतेन्दु श्रीयुतबाबू हरिश्चन्द्र जी के कर्ण गोचर भई तो इन नें अपनी स्वाभाविक परमोदारता

से कहा कि कोई चिन्ता की बात नहीं है अब सरकार से भी इस विषय में कुछ उचित प्रबन्ध की प्रार्थना करनी आवश्यक है क्योंकि ऐसी ऐसी व्यवस्था बनने से सरकारी हुक्काम लोगों तक तकलीफ पहुचती है और साधारण प्रजा को भी क्लेश उठाना पड़ताहै लोग केवल प्रतारणा कर रूपया लेकर दूर हो जाते हैं और इस परम व्याधि के निवृत्यर्थ बाबू साहिब नैं प्रथम एक व्यवस्था बनना आवश्यक समझा और जैसा कि लोगों का इस समय पर० पण्डित राममिश्र शास्त्री जी के पाण्डित्य और सत्य परायणता का विश्वास और परिचय अनेक समय मिल चुका है वैसा ही इससमय पर इस काम का भार इन को समर्पण करना आवश्यक समझा और बाबू साहिब ने काशी की धनिक मण्डली से इस विषय पर सलाह कर के पण्डितप्रवर श्रीराम मिश्र शास्त्री जी से व्यवस्था बनाने की प्रार्थना करी और उन नै भी स्वीयपर-मोदार स्वभावानुसार इस व्यवस्था के बनाने का परिश्रम स्वीकार किया धन्य है श्रीबाबू हरिश्चन्द्र जी साहब कि जिन नै ऐसे समय पर धर्मोद्धारार्थ परिकर किया और धन्य हैं वे पण्डित जिनने इसविषय मैं शङ्का कर के इस विषय का निर्णय कराया, और जो इस विषय मैं क्षत परिकर हो कर धर्म तत्व निर्णय द्वारा लोगों के संशय छेदन मैं तत्पर हैं पण्डित राममिश्र शास्त्री जी उन को भी धन्य वाद देते हैं ॥

इति सर्व देश हितैषी कश्चित् श्रीकृष्णशरण गुप्त:

यद्यपि संस्कृत मैं जो व्यवस्था लिखी गई है उस्का ठीक २ अवतरण

देश भाषा में करना अतिकठिन है क्योंकि वह मीमांसा और नाना तर्कवितर्कमय है परन्तु यथा शक्ति संक्षेप से मैं उन लोगों के अर्थ देश भाषा में लिखताहूं जो शुद्धान्तःकरण सें निर्णय चाहते हैं न कि रुपये केवल अपनी और मिथ्यावाद मात्र बल सें ब्राह्मणों की हानि चाहते हैं उनके अर्थ ॥ ब्राह्मण को दशाह क्षत्रिय को द्वादशाह वैश्य को पञ्चदशाह और शूद्र को मासाशौच मनु १ याज्ञवल्क्य २ अत्रि ३ संवर्त ४ गौतम ५ अङ्गिरा ६ दक्ष ७ वसिष्ठ ८ देवल ९ शातातप १० यम ११ औ० विष्णुपुराण ; गरुड़पुराण इत्यादि ग्रन्थों में एकही प्रकार से पूर्वोक्त आशौच लिखा है और पराशर ऋषि जिन की संहिता विशेष कर के कलियुग के अर्थ बनाई गई है वे तो यह लिखते हैं "अतः परंगृहस्थस्य कर्माचारं कलौयुगे" अर्थात् अब हम कलियुग में गृहस्थ का कर्माचार कहते हैं यह कह कर फिर भिन्न भिन्न स्पष्ट पूर्वोक्त रीति से चारों वर्ण को आशौच व्यवस्था भिन्न२ लिखते हैं इससे यह अब स्पष्ट है कि इस बातके विरुद्ध जो लेख है सो भ्रान्ति हैं केवल आपत्ति में दक्ष ऋषि ने लिखा है कि आशौच न्यून हो सक्ता है यह बात उचित भी हैं क्यों कि आपत्ति में सर्व धर्म का सङ्कोच होता है तो आशौच का भी सङ्कोच होना असम्भव नही है औ० जो लोगों नें श्रीगरुड़ जी के नाम सें मनमाने वचन बना कर व्यवस्था लिखी है इस का हाल यह है कि किसी समय में किसी झूंझुण नगर के वासी शारदूल सिंह राजा के सुखलालजी मिश्र थे और उनके पुत्र हरिनारायण भये और उन के नौनिधिराम भये उन नें एक मन माने श्लोक

संग्रह किये सो उसी संग्रह को लोगों नें बुद्धि की अल्पता और अज्ञानके बल से श्रीगरुड़ जी का साक्षात् वचन जान लिया और व्यवस्था भी कर दी और यजमानसे पुजाय भी लिया शास्त्रार्थ में इसी गरुड़पुराण के बल से विजय भी भया और यह जो हम हाल लिख चुके हैं सो सर्व इस कृत्रिम गरुड़पुराण के अन्तमे लिखा है परन्तु देखे कौन यहां तो पण्डित जी की मिथ्या बकवाद से और सेठ जी की व्यवस्था से संमति करने वाले लोगोंकी एक रुपया से शहर के नव युवक लोगों की ताली पीटने से ही सिद्धि है शास्त्र तो चुल्हा में पड़े व्यवस्था में हस्ताचर भये लोगों नें जयजयकार मनाई अब धर्म शास्त्री विद्वान् लोगों से कौन काम है कलियुग मे सर्व शास्त्र शीघ्र बोध में निवास करते हैं धर्मशास्त्र सें कौन प्रयोजन है, बिशेष लिखना कुछ आवश्यक नही है हमने भली भांत निश्चय किया कि जो विश्वसनीय एक दो प्राचीन पुस्तक गरुड़ पुराण के हैं उन में इन वचनों का कहीं नाम निशान भी नही है बल्कि चारों वर्ण का भिन्न भिन्न आशौच लिखा है औ सर्व का सार तो यह है कि जितने ग्रन्थ हैं हारलता इत्यादि, मैथिल के निर्णयामृत अपरार्कमदनपारिजात इत्यादि गौड़ के और विवेकादि बंङ्गाली के सर्व ही में चार वर्ण का भिन्न भिन्न आशौच लिखा है कहीं भी सर्व के अर्थ दशाह का नाम मात्र भी नहीं, सत्य बात तो यह है कि प्रामाणिक के किसी ग्रन्थ में भी वैश्यादिक के अर्थ दशाह का नाम नही लिखा है याज्ञवल्क्य लिखते हैं (विप्रः पञ्च दशे वतु)

याने वैश्य को पन्द्रह दिन ही आशौच होता है न्यून नहीं और शङ्ख ऋषि भिन्न भिन्न आशौच लिख कर अन्त में लिखते हैं कि (शुद्धिर्भवति नान्तरा) अर्थात् बीच में किसी प्रकार शुद्धि नही होती परन्तु अपनेअपने वर्ण की पञ्चदशाहादि प्रभृति काल से शुद्धि होती है

औ० प्रसङ्ग से यह भी बात लिखते हैं कि सपिण्डीकरण का मुख्य काल वत्सरान्त है और द्वादशाह काल अग्निहोत्री लोग के अर्थ है अथवा विपत्ति काल के अर्थ है क्योंकि धर्मशास्त्र मे बिना-निमित्त से मासिक श्राद्ध के कालापकर्ष का निषेध लिखा है औ० मासिक न करके तो सपिण्डीकरण नही होता यह बात सर्व धर्मशास्त्र में विदित है तो अब कहो कि सपिण्डीकरणका काल किसी विशेष निमित्त बिना द्वादशाह कैसा हो सक्ता है औ० जब द्वादशाह में सपिण्डीकरण की मुख्यता बोधक वाक्य केवल आपत्ति विषय पर है और विवाहादि निमित्त के उपस्थित होने से द्वादशाह में सपिण्डीकरण करदेना इसी से उसको गरज है तब द्वादशाह में सपिण्डीकरण हेतु से शूद्र पर्यन्त का आशौच दशाह कहना कोई भी विद्वान् पण्डित का काम नही है अधिक जिन लोगों को इस विषय में देखना होय वे संस्कृत देखलें ॥

रहा अब आद्यश्राद्ध सो उसकी यह बात है कि महर्षि याज्ञवल्क्य, शङ्ख, पैठीनसि, लौगाक्षि, वृद्धवशिष्ठ कहते हैं कि आद्यश्राद्ध एकादश दिन मे करना उचित है तो ब्राह्मण को तो ग्यारहें दिन मे आशौच निवृत्त होजाता है औ० क्षत्रियादिकोंको तो आशौचके भीत-

वही करना होगा (वचनात्प्रवृत्तिर्वचनान्निवृत्तिः) जैसी जो बात शास्त्रमें लिखी है वह वैसी ही मानना उचितहै और यह समस्त गौड़ ग्रन्थ का सिद्धान्त है कि आद्यश्राद्ध सूतकसे क्षत्रिय वैश्यादि ग्यारहें दिन करे हम यहां संक्षेपसे उन गौड़ ग्रन्थो का नाम लिखते हैं जो गौड़के एतद्देशीय व्यवहार में प्रधान हैं निर्णयामृत, मदनरत्न, मदनपारिजात, अपरार्क, मिताक्षरा, इन सर्व ग्रंथों में आद्यश्राद्ध क्षत्रिय वैश्यादिकों को ग्यारहे दिन सूतक में करना लिखा है यदि किसी को सन्देह होय तो हमारे पास आवें तीन तीन सौ वर्ष की लिखी हुई परमप्रामाणिक शुद्ध पुस्तक उपस्थित है देखलें और अपना जी भरलें कुछ धोखा की बात नहीं है किसी मैथिल के अथवा बङ्गाली के ग्रन्थ को लेकर बैठ गये और अशुद्ध बात वाद करके धोखा देने के अर्थ कहदिया कि यही ग्रन्थ गौड़ का है भला विचार तो करो बङ्गाली और मैथिल ही के ग्रन्थ के भरोसे सें समस्त काम यदि गौड़के यजमान और शिष्य वैश्य क्षत्रियादि करने लगें तो उन को श्राद्ध में मांस* व्यवहार भी करना आवश्यक होगा और कितनी आपत्ति ऐसी आवेंगी कि व्यवहार ही समस्त लुप्त हो जायगा मिथिला बङ्गाल के और एतद्देश के दत्तकादि व्यवहार में भी प्रभेद है यहसरकार तक विदित बात है-जब यह दशा है तब निज ग्रन्थ का अपमान कर के अन्य देश के

---

* राजपूताना के प्रसिद्ध मांस भक्षक क्षत्रिय भी श्राद्ध के दिन मांस का नाम भी नहीं लेते ॥

ग्रन्थ की बात को लेकर अपने देशीय आचार को बदलना यह अत्यन्त भूल का काम है हम यहां अपने वक्तव्य का संक्षेप कर देते हैं जो कि दशाह के आशौच का बोधक वाक्य किसी स्थान में देख पड़ता है उसका मतलब यह नहीं है कि शूद्रादि दशदिन में सब काम के योग्य हो जाते हैं परन्तु उसका मतलब यह है कि वे द्विज सेवादिकार्य में शुद्ध हो जाते हैं और सर्वाशौच निवृत्ति तो मनूक्त काल ही से होती है यह बात स्पष्ट रूप से गौड़ के यावत्प्राचीन नवीन धर्मशास्त्र के ग्रन्थों में लिखी है अब रहा॥ (सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा। दशाहाच्छुद्धि रेतेषामिति शातातपो ब्रवीत्)॥ इसका जो अर्थ है वह तो पण्डित साहब ने कभी सुना भी नहीं औ० मनहीं से अर्थ लगाय के वैश्य लोगों के गले पर छूरी फेरदी "अर्थ यह है पूर्व युग में ब्राह्मण वर्ण के लोगों को निज वर्ण औ० अपने अपकृष्ट वर्ण की स्त्री से विवाह का अधिकार था तो यदि ब्राह्मण ने चार वर्ण की स्त्री से विवाह किया और उनको उनकी सन्तति में सूतक उपस्थित भया तो सूतक कैसा मानना होगा इसपर लिखा कि सर्वही वर्ण के लोगों को जननाशौच और मरणाशौच में दशाह से शुद्धि होती है अतएव ऋषिने (एतेषाम्) लिखा है अर्थात् इनका जो को उत्कृष्ट वर्ण के पुरुष से अपकृष्ट वर्ण की स्त्री में उत्पन्न भये हैं उनका दशाहाशौच है औ० क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो कि अपने समान जाति के माता पिता की सन्तति हैं उनको दशाहाशौच नहीं है उन लोगों के तो अर्थ अपने निज जात्युक्त भिन्न भिन्न द्वादशाह पञ्चदशाहादि कालही है औ० जो नाना शास्त्र जानते हैं उनकी दृष्टि मे यह बात

अति स्पष्ट है क्योंकि आदिपुराण, विष्णु पुराण, वाराहपुराण, महाभारत, विष्णुस्मृति, आपस्तंबस्मृति, (मनुस्मृति) इत्यादि ग्रन्थ मैंस्पष्ट रूप से यहबात लिखी है इन सर्व ग्रन्थो मे से यहां हम एक आपस्तंब दृष्टान्त के अर्थ लिखदेते है (क्षत्रविट्शूद्र जातीनांयदा मृतकसूतके। तेषान्तुपैटकंशौचं विभक्तानान्तुमातृकम्॥) याने ब्राह्मण से उत्पन्न भये क्षत्रिय वैश्य औ० शूद्र इन को यदि सूतक मृतक उपस्थित होय तो दश दिन मे शुद्ध होते हैं यदि ब्राह्मण पिता के संग निवास करते होंय औ० यदि माता के संग पिता से पृथक् होकर रहैं तो उन लोगों को माता कीजातिका आशौच मानना चाहिये अर्थात् यदि माता क्षत्रिया होय तो द्वादश दिन वैश्या होय तो पंच दश दिन इतयादि इस विषय पर नाना तर्क वितर्क संस्कृत मे लिखा है यदि पाठकगण अधिक जानना चाहैं तो संस्कृत में देखलैं औ० यह हम यहां पाठक गणसै सविनय निवेदन करते हैं कि यह हमारा दीर्घ परिकर केवल आपही लोगों के अर्थ हैं आप लोग धूर्त्त वंचनामै मत पड़िये औ० शुद्ध चित्तसै देखिये जहां शङ्कारहै वहां किसी अपक्ष पाती सच्चे पंडित को बुलाके पूछ लीजिये औ० सर्व वर्ण के दशाहाशौच का मूलतो केवल यही भया कि कलिमे जब यवन राज्य प्रचार भया औ० उनकी ऐय्याशी देखकर आर्यभी मिरजा बनगये सूतक पातक का समस्त कार्य क्षत्रियोने पुरोहित के द्वारा करना आरम्भ किया तोब्राह्मणों ने दशही दिनमे छुट्टी पाई दक्षिणा लेपांव पुजाय दूरभये जिस्का

बाप मरा उस्को यदि कुछ ख्याल नहो तो पुरोहित जीको कौन काम था बस ठाकुर साहब दश दिन मे जब पवित्र भये तो वैश्य शूद्र इसदेश मे प्राचीन कालसे आजतक भेड़िया धसान मे पड़े हैं वे क्या जाने धर्मशास्त्र इननै भी क्षत्रिय लोगों की राह धरी फिर जब ठाकुर साहब के यहां कहीं बिचार भी पड़ा तो पण्डित जी ने डर के अथवा लोभ से कह दिया कि आपतो सूर्यवंशी है आपको तो आशौच शास्त्र मे लिखा ही नही यह तो केवल अपकृष्ट जाति के लोगों के अर्थ है आपको तो अन्नदाता सद्यः शौच मनु ने कहा है एक समय की बात है कि किसी राजपूताना के राजाने निर्जलाकाव्रत बड़ी श्रद्धा भक्ति से किया औ० विद्वान लोगों के संग बैठाथा परंतु एक तो राजशरीर औ दूसरे ज्येष्ठ का मास औ राजपूताने की गरमी प्रसिद्ध ही है तालू चटकने लगा तृषाने बाधा करी राजानै पूछा कि महाराज मुझे तृषा अत्यन्त है कोई ऐसा उपाय है कि व्रत भंग नहोय औ० मेरा तृषादोष निवृत्त होजाय बस इतना सुनतेही एक खुशामदी पंडित बोल उठे कि महाराज पृथिवीनाथ जलकी क्याबात है आप शर्बत लीजिये तबतो राजा बड़े प्रसन्न भये औ० कहनेलगे कि 'म्हांने जब धर्मशास्त्रका बचन दिखा स्योतब सर्बत पीस्यां' तब तो पंडितजी चार पांव से खड़े होगये औ कहनेलगे कि (सर्बतः प्रति गृह्णीयात् भोजनन्न समाचरेत्) महाराज बिचारे ने ब्राह्मण की बात पर आकर शर्बत लिया जबकि खुशामदी लोग राजघराने में ऐसी बात कहकर दूर होजाते हैं तब वैश्यादिक के घर पर कौन

चिंता (तुष्टो वैश्योसुष्टिमन्नं ददाति) इसी कारण से यह हमारी चार वर्ण के बुद्धिमान औ धार्मिक लोगों से सविनय प्रार्थना है, कि आपके अर्थ शास्त्रीजी महाराज ने परिश्रम किया है इसे सफल करो औ अपने पूर्वज लोगों की स्थापित शास्त्रीय मर्यादा पालन करो औ० आशौच ब्राह्मण का दशाह क्षत्रिय का द्वादशाह वैश्य का पंच दशाह औ शूद्र का मासही मानो औ० मन्वादि महर्षि के अनुयायी बन जावो॥

आप चातुर्वर्ण्य का हितकारी
श्रीहरि राममिश्र शास्त्रि चामाज्ञयाप्रहृत्तो
गौरी नाथ शास्त्री नैयायिकः॥

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

श्रीचातुर्वर्ण्याचारो विजयतेतराम्

कश्चिद्ब्राह्मणादिवर्णानांसूतकाशौचकालोमुख्यःप्रातिस्विकः कश्चिदाहोस्वित्सर्ववर्णसाधारणएकएवेतिप्र-

श्ने मुख्यः प्रातिस्विकः कालइत्युत्तरम्

तथा हि मनुः। शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति इति एतत्स्म मनूक्तः प्रातिस्विकएवाशौचकालो मुख्यः। एवमेव तु "दशाहेन द्विजः शुध्येद्द्वादशाहेन भूमिपः। अर्द्धमासेनवैश्यस्तुशूद्रो मासेनशुध्यति" इतिवचनम्।१।"एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम्। चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक् पृथगि"ति हेमाद्र्यादिसम्प्रसिद्धनिबन्धोद्धृतपैठीनस्यादिवाक्यानि च साधुसमर्थयन्ते यश्चाप्यपकर्षश्चाशौचे सोऽप्यसौगुणगरिमनिबन्धनो ननु जातिमात्रनिबन्धनो न चापि सर्ववर्णसाधारणएकः। "क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिः। तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवाप्नुयादि"त्याद्यपकर्षविधायक

वचनेन गुणगरिमसमुद्रगोर्वर्णस्याशौचापकर्षस्य प्रातिस्विकरूपेणैव बोधनात्। यच्च कान्दिशीकं गारुडं वचनमुपचित्य कलिकालमात्रनिबन्धनः सर्ववर्णानामाशौचसाङ्कर्यप्रलापः सोऽपि हेयो गारुडवचनस्य प्रामाणिकनिबन्धेष्वनुद्धरणात् प्रामाणिकत्वाङ्गीकारेऽपिवा मन्वादिवङ्गतरपरमर्षिवचो विप्लवभीत्या तस्यापद्विषयकत्वेनैव व्यवस्थाप्यत्वात्॥ यदपि क्षत्रियवैश्यादीनां द्वादशाहपञ्चदशाहाद्याशौचाचारपरिग्रहे तेषा मनिष्टन्ताशौचसमयानामशुचीनामेकादशेऽहनिनाद्य श्राद्धाधिकारित्वमिति कश्चित् तदपि शास्त्रतात्पर्यानवबोधविजृम्भितम्। 'आद्यमेकादशेऽहनि' इति विशेषणाक्षेण तावन्मात्रशास्त्रीयकर्माधिकारितायास्तत एवकल्पनीयत्वात्। अतएवतु शङ्खः "आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः"। इति तदेवमनापन्नानां ब्राह्मणक्षत्रियविशां दशाहद्वादशाहपञ्चदशाहाशौचपक्षावलम्बनमेकादशेऽहनिचाद्यश्राद्धानुष्ठानं च धर्म्यमिति कृतधर्मशास्त्रव्यवस्थो नित्यानन्दपण्डितोऽपरे च धार्मिका विद्वांसः संमन्वते॥

श्रियै नमः ।

अथ मन्दानुजिघृक्षया व्यवस्थार्थसंक्षेपः

मीमांसकव्यवस्थाया अतिसङ्क्षिप्तगहनगभीरार्थगर्भिततया विद्वदेकवेद्यत्वान्नततः सुकुमारमतेः कुमारस्य कस्याप्यवगमसिद्धिः प्रत्युतानेकवितर्कसमुत्थानसम्भव इति तत्रत्यकठिनपदव्याख्या पुनरावश्यकीति तामेवतावत्समारभे ॥

वक्ष्यमाणैवकारानुषङ्गेन ब्राह्मणादिवर्णानां प्रातिस्विक एव मृतकाशौचकालो मुख्य इत्यन्वयस्तत्र वर्णानां प्रतिस्वमभिहितो ब्राह्मणत्वादिकमुद्दिश्य दशाहद्वादशाहादिरूपो नात्युक्ताशौचकालो मुख्यश्चौत्सर्गिक इति सिद्धान्तिनः । पूर्वोक्तमुख्यपदानुषङ्गेन सर्ववर्णसाधारण एक एव मुख्यः काल इति पूर्ववादिनस्तत्र सर्ववर्णानामेक एवाशौचकाल इत्यस्य दशत्वत्वरूपैकजात्यवच्छिन्नसङ्ख्यावच्छिन्नदिनात्मक कालापनेयमाशौचमौत्सर्गिकं सर्ववर्णानामित्ययमर्थः । अत्रैकत्वविशिष्टानेकवृत्ति धर्मरूप विशिष्टवाचकस्य साधारण पदस्य विशेषणवाचकैकपदसमवधाने विशेष्यमात्रपरतया तदुपादानमिति रहस्यम् ॥

प्रातिस्विकाशौचपक्षस्त्र सर्वर्षिसम्मतत्वेपि मनोर्म-
सामान्यतया तदीयामेवास्यहिततमां स्मृतिं प्रमाणय-
ति "तथाहीति । न चाङ्गिरसस्य "सर्वेषामेव वर्णानां
सूतके मृतके तथे" तिवचनस्य सत्त्वे किमिति मानवे
एव पक्षे मान्यतेतिवाच्यं तस्याङ्गिरससंहितायामनुप-
लम्भेन गौडग्रन्थेष्वतथार्थकतयाव्याख्यातत्वेनप्रायशउ-
पेक्षणेनचाऽत्यन्तहीनबलत्वेन" विरोधेयत्रवाक्यानांप्रा
माण्यं तत्रभूयसाम्,, इतिकात्यायनेनमन्वादिमुनिवचन-
निचयविरुद्धार्थाभिधायिनोऽमुष्याप्रामाण्यज्ञापनेन चा
ननुष्ठापकत्वात् । नच कुलदेशाचारभेदेन मन्वाद्युक्ता-
र्थानुष्ठानसमर्थने, तैः समं न विरोधइतिकातीयं नि-
रुक्तवचनं नाप्रामाण्यग्राहणप्रभविष्णु इति वाच्यम् ।
आचारस्य प्रामाणिकत्वे तेनदेशभेदेनव्यवस्था-देशभे-
देन व्यवस्थायां च मनूक्तविरोधितत्सम्पादनेन वचन-
स्यप्रामाण्यमित्यन्योन्याश्रयात् । नचोक्ताङ्गिरससमाना
र्थस्य "आशौचं दशरात्रं तु सर्वत्राप्यपरे विदुः" इति
देवलवाक्यस्य सत्त्वात्कथं तदुपष्टंहितमिदमुक्ताङ्गिरस-
वाक्यं स्वोक्तार्थानुष्ठापने आचारमुखनिरीक्षकमिति
नान्योन्याश्रयइतिसाम्प्रतम् । आङ्गिरसस्य "निधनेप्र-

सर्वे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम्” इतिस्वोत्तरार्द्धविरो-
धेनस्वस्वजात्युक्तस्वाध्यायाग्निसेवाद्विजशुश्रूषादिकर्मा-
नुष्ठानभङ्गभीरूणां तेष्वेव कतिपयकर्मस्वाशौचनि-
षुप्रतिबन्धकताशङ्काकुण्ठनबोधकत्वेन सर्वाशौचनिवृ-
त्त्यबोधकत्वात् । अतएवतु हारलतापरार्कप्रभृतिमा-
न्यनिजनिबन्धेषु “आशुच्यं दशरात्रं तु” इति वचनस्य
निरुक्तरीत्यैवार्थमुपवर्ण्य “सर्वाशौचनिवृत्तिस्तु मनूक्त
कालावधिनैव” इत्युक्तम् । “शूद्रस्यतु द्विजशुश्रूषाधिका-
रित्वमपि दशरात्रेण तदैव यदिनसेवकान्तरलाभ”
इतिचस्पष्टमुक्तमिति किमपि नापरोद्धं हतश्रमाणां
विदुषामित्युपरम्यते ॥

वयंतुसर्वेषामेववर्णानामित्याङ्गिरसस्याऽतियुक्ततममेवा
र्थंब्रूमहे सचाग्रेवक्ताभविष्यतीतियुक्तंमीमांसकस्यता-
नि वचनान्यनुदाहृत्य मानववचनोदाहरणमितिसुगुम-
म् । ननु “सद्यःशौचंतथैकाहस्त्र्यहश्चतुरहस्तथा” इत्या-
दिस्मृतिष्वाशौचे बहूनां पक्षाणामभिधानात्कथंप्राति-
स्विकाशौचपक्षे एव निर्भरोपवर्णनमित्याह “यस्याप्य-
पकर्षं” इति, अत्रत्यापकर्षपदं चोत्कर्षस्यापिसंग्राहकम्
“तदधिगमउत्तरपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौतद्व्यपदेशात्-

त्,, इतिबादरायणीये ऽथपदस्येव पुण्योपग्राहकत्वं यथा वा हेत्वाभाससामान्यलक्षणस्यानुमितिपदस्यानुमितिनिष्ठकार्यतानिरूपकसंबन्धत्वेनानुमितितत्कारणज्ञानपरत्वमजहत्स्वार्थलक्षणया, उत्तरत्रापि च "गुणगरिमनिबन्धनः,, इतिगुणावमतासंग्राहकमप्यजहत्स्वार्थलक्षणयातिन स्वस्वजात्युक्ताशौचप्रसङ्गे प्रसक्तसम्पूर्णाशौचानामनापदि स्वजात्युक्तौत्सर्गिकाशौचापेक्षयायौ याविमावपकर्षोत्कर्षौ तौगुणगरिमगुणावमतानिबन्धनौ नतु जातिमात्रनिबन्धनौ नचापि सर्ववर्णसाधारणाविति हि मीमांसक निगूढार्थत्वेन शातापीयो वैश्यस्यापकृष्टस्य विंशत्यहीनाशौचपक्षः क्षत्रिये ऋष्यन्तरोक्तः षोडशाहीनाशौचपक्षश्च साधुसंगच्छते । अत्र व्याप्तौपदव्यावृत्तिः स्वयमूहनीयास्सुधीभिर्वयं तूदास्महे विस्तरभयात् ॥

अपकर्षश्चेह मन्वादिमहर्ष्युक्तजात्युक्ताशौचापेक्षया कालह्रासो ऽभिमतः । जात्युक्ताशौचप्रसङ्गे प्रसक्तसम्पूर्णाशौचानामनापदीति चत्रयमादिस्तेन जात्युक्ताशौचप्रसङ्गे प्रसक्तसम्पूर्णाशौचानामनापदि यश्चाप्यपकर्षः सोऽप्यसौ गुणगरिमनिबन्धनइत्याद्यर्थलाभस्तेन अ

संस्कृतप्रणीतशास्त्राणादि वालाशौचे ऽतिक्रान्तत्रिराच
मात्राशौचे आपन्नाशौचे च न व्यभिचारो निरुक्तनिय-
मस्य ॥

गारुडत्वेनाभिमतानि यानिवादिनस्तानि तुसर्वथैवाप्रा-
माणिकानि धूर्त्तकोडितत्वादित्याशयानोपि 'तुष्यत्वि'
तिन्यायेननिजबुद्धिवैभवप्रौढिमानमाह्लदः प्राह 'प्रामा
णिकत्वाङ्गीकारेपिवेति' आशौचशास्त्रार्थस्यैवप्रक्रान्त
तुन वादिनो विषयान्तरविचारप्रचारणैकान्त-
तोनिग्रहमापादयतीति नकिञ्चिदिह प्रतिवक्तव्यं प्र-
त्युतैवमवस्थितौविचारापर्यवसानेनमीमांसकस्योत्तर-
वितरणं स्वस्यैवनिग्रहमतिप्रसञ्जयेत्तथाप्यपरिशीलि-
तकथानियमसमयानां धनिकानां स्वस्प्रतिबन्द-
नाप्रवृत्तौनिगृहीतत्वभ्रान्तिंतदीयं करुणयाविषय-
व्यामोहंचपराचिकीर्षुः प्राह 'यद्पीति, यद्यपिसन्ति
सुबहून्येकादशेहन्याद्यश्राद्धविधायकानि पारमर्षवच-
नानितथापितेषांब्राह्मणमात्रपरतायाः, एकादशाहपदे
जघन्यवृत्त्या आशौचान्तकालोपलक्षकतायावाकथंचि
त्संभावनेन सर्वथापियाज्ञवल्कीये तथार्थकतायाः, अ-
सम्भवेन चतदेवाह ॥ आद्यमेकादशेहनि'इति यत्तैका-

दशाहपदस्य विधेयसमर्पकतया । "विधौ न परः" इति-जैमिनीयन्यायोपरोधेन 'गङ्गायां घोषः' इत्यादाविवप्रमितान्वयानुपपत्त्यभावेन च एकादशाहपदे लक्षणाया दुःसमर्थत्वेन नाशौचान्तकालोपलक्षकत्वपरिकल्पनाप्रसरः । यथा चास्य न ब्राह्मणमात्रपरत्वं तथाग्रे आद्यश्राद्धनिरूपणावसरे प्रपञ्चयिष्यत इति ततएवावधारयध्वं, साधु तन्मीमांसकस्यतथार्थव्यवस्थापनमिति-कृतव्यवस्थार्थसङ्क्षेपो । राममिश्र शास्त्री

उदासीनवदासीनएकान्ततो मध्यस्थः
शास्त्रीयतत्वनिर्णिनीषया लोकोपचिकी-
र्षया च कृतावधानोऽमुष्मिन्नामुष्मिकार्थ
निरूपणे इति शम्

शुद्धिसर्वस्वम् ।

श्रियैनमः ॥
श्रीपतयेनमः ॥

चातुर्वर्ण्याचारोविजयतेतराम्

गुण कर्म विभाग भाग पूर्वं
भगवान् वेद पुमान् ससर्ज वर्णान् ।
अधुना तु धुनातु पूर्ववत्तत्
परि वृत्तिं कलि काल केलि मूलाम् १
तनूरुद्वाराः समुपेत्य योऽसौ
सद्धर्मविद्वेषपरान्निरास्यत् ।
सएव चास्थापयितुं जगत्यां
धर्मं व्यवस्थाभिषतोऽवतीर्णः २

यद्यपि सैद्धान्तिकमद्व्याख्यानमर्वाग् व्यवातिष्ठिपामैवेति न कश्चिन्निर्गलितोऽर्थोवशिष्यतेऽभिधातुं, तथापि सुनिवचननिचयपर्यालुलोचयिषयेदमपि विचारपथमानेयं विदुषाम्, आशौचविषये के के पक्षा अभिहिताः शास्त्रे, कथं च तद्व्यवस्थापनं, तत्राशौचं नाम जपदा-

नप्रतिग्रहस्वाध्यायसंस्पर्शनसहासनदेवपूजनाऽपूर्वती-
यथानादिप्रतिबन्धकं शास्त्रैकसमधिगम्यं शास्त्रोक्तका-
लैकक्षपणीयं दुरदृष्टं देहिनां, ततश्च तदवस्थित्यपस-
रणयोः कालः शास्त्रत एवावधारणीयस्तस्यालौकिकै-
कप्रमाणव्यवस्थाप्यत्वात् । तथा हि मनुः "शुध्येद्विप्रो
दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन
शूद्रो मासेन शुध्यति" इति । योगियाज्ञवल्क्योपि
"क्षत्रस्य द्वादशाहानि विशः पञ्चदशैव तु । त्रिंश-
द्दिनानि शूद्रस्य तदर्द्धं न्यायवर्तिनः" इति, अत्रिरपि
"ब्राह्मणोदशरात्रेणद्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्च-
दशाहेन शूद्रो मासेनशुध्यति," इति, गौतमोपि स्वी-
यस्मृतौगद्यरूपेण "शावमाशौचं दशरात्रमन्त्विग्
दीक्षितब्रह्मचारिणां सपिण्डानाम् । एकादशरात्रं
क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्याऽर्द्धमासमेकमासं शूद्र-
स्य तच्चेदन्तः पुनरापतेत्तच्छेषेण शुध्येरन्" इति ।
संवर्तर्षिः "विप्रो दशाहमासीत दानाध्ययनवर्जितः
क्षत्रियो द्वादशाहेनवैश्यः पञ्चदशैव तु ॥ शूद्रः शुध्य-
ति मासेनसंवर्तवचनं यथा" इत्यादि । अङ्गिराश्चापि
"दशाहाच्छुध्यते विप्रो द्वादशाहेन भूमिपः । पाक्षिकं-

वैश्यएवाह्नः शूद्रोमासेनशुध्यति" इति । पराशरः "अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा । दिनत्रयेण शुध्यन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसूतके । अतः परं गृहस्थस्य कर्म्माचारं कलौयुगे । धर्म्मंसाधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्यं क्रमागतम्" इत्युपक्रम्य विशेषतः कलौ चातुर्वर्ण्यं धर्म्मान् बुबोधयिषुः "क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः । शूद्रः शुध्यति मासेन पराशरवचो यथा । उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिश्च जायते । ब्राह्मणानां प्रसूतौ तु देहस्पर्शोविधीयते ॥ जातौ विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रोमासेन शुध्यति ॥ एकाहाच्छुध्यते विप्रो योग्निवेदसमन्वितः । त्र्यहात्केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ जन्मकर्मपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः । नामधारकविप्रस्तु दशाहं सूतकीभवेत्" इति, दक्षोपिस्वस्मृतिषु "जातिविप्रो दशाहेन द्वादशाहेनभूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति" इति । यमोपिस्वसंहितासु । दशाहाच्छुध्यतेविप्रोद्वादशाहेनभूमिपः । पाक्षिकं वैश्यएवाह्नः शूद्रोमासेनशुध्यति ॥ इति । वसिष्ठोपि "ब्राह्मणो दशरात्रेण पञ्चमात्रेण भूमिपः वि-

शतिरात्रेण वैश्यस्तु शूद्रोमासेन शुध्यति ” इत्येवमादिर्मन्वाद्यष्टादशमहास्मृत्यन्तर्गतोवाक्यकलापो लोकव्यवहारतत्त्वनिरूपणैदम्पर्येण प्रवृत्तोनात्या प्रातिस्विकं ब्राह्मणादीनामाशौचसमयमाचष्टे ॥ क्वचिच्च निरुक्तर्षि वाक्यकलापे गुणगरिमनिबन्धनः पुनरशौचसङ्कोचोपि यथा “ तदहं न्यायवर्त्तिनः “ क्षत्रियस्तुदशाहेनस्वकर्मनिरतः शुचिः ” इत्यादौ प्रदर्शितः एतत्तत्त्वं चाग्रे प्रदर्शयिष्यामः ॥ सर्ववर्णसाधारणेनाशौचबोधकत्वेनाभिमतं तु “ सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेतथा । दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ” इत्यतिविरलोपलम्भमेकमात्रं स्मार्तवचनं, सर्वनिबन्धानुद्धृतानिकानिचित्कान्दिशीकानि गरुड़पुराणान्तर्गताधुनिक कविजनोनिधिरामधूर्तनिर्मित मुद्रितप्रेतमञ्जरीप्रविभागमात्रोपलब्धान्यपि गरुड़पुराणीयपुराणविश्वसनीय पुस्तकेष्वनुपलम्भदोषदूषितानि सर्ववर्णाशौचसाङ्कर्यमिच्छतां तु सर्वस्वभूतानि, परमस्माभिर्नव्यवस्थापनीयानियावद्, वादीतेषांप्रामाणिकतांनव्यवस्थापयेदिति तान्यव्यवस्थापनीयान्येव, अथ तु व्यवस्थामाह देवलः “ आशुच्यं दशरात्रं

तु सर्वेषामपरे विदुः। निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्म्म-
णः क्षयम्" इति। महाकुटुम्बिनां क्षत्रियवैश्यादीनां
पुत्रपौत्रसगोत्रसकुल्यपरम्परावतां जननाद्याशौचस्य
भूयसुपनिपातेसन्ध्यास्वाध्यायदेवार्चनादेर्महानेव प्र-
त्यूहव्यूहसन्निपातः संघटते इतीष्टदेवताराधने वैक्ल-
व्यजुषां क्रियासमभिहारेण परितापपरम्परापात इति।
तादृगवस्थास्वते आशौच संकोचे तदनुष्ठानमात्रायानु-
मन्यन्ते इति हरिदेवलः एतादृशपुरुषविशेषेष्वपि स्वयमा-
शौचसंकोचे विप्रतिपद्यमान इव परेषामृषीणां तात्पर्य-
मपूरयत् "निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम्,
इति। अतएव महानिबन्धकारा अपि सर्वे तथैवाशौचसं-
कोचमन्वमंसत। स्वस्थक्षत्रियवैश्यादीनामाशौचसंको-
चस्तु न केनाप्यनुमन्यते शिष्टेन, अतएव तु दक्षः "स्वस्थ
काले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्तितम् आपद्गतस्य सर्व-
स्यसूतकेपि न सूतकम्" इति। अतएव "दशाहएव
विप्रस्य सपिण्डमरणे सति। कल्पान्तराणि कुर्वाणः क-
लौ भवति किल्विषी," इति हारीतेन ब्राह्मणानामपि
न्यूनाशौचपक्षः कलौ कलङ्कितः किंपुनः क्षत्रियादेः।
इत्थमेव च पाराशरो ब्राह्मणानामपि न्यूनाशौचपक्षो

युगान्तरेण इतिमहानिबन्धकृतः। अतएवानापद्याशौ-
चसंकोचं न्यषेत्सीच्छङ्खः "क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यःप-
क्षेण शुध्यति। मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धिमाप्नोति नान्त-
रा इति॥ तस्माद्विवाहेषु चिरकालात्करिकरभकलभस-
मासादनप्रसक्तानां केषांचिदाशौचएवापन्नत्वं प्रसाध्या
शौचापकर्षकथनं काकणिकाकणादानासादितानेका-
नर्थपरम्पराणां केषांचि देवयुक्तम्। यदपिकलेरेवायुः
क्षयादिसर्वापन्निदानतां पुरस्कृत्यापद्रूपतामाचक्षाण-
स्य कलिबलमवलम्बमानस्य ततएवसर्ववर्णाशौचसाङ्कर्य-
मिच्छतः "सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेऽपि वा। दशा-
हाच्छुद्धिरित्येषकलौशास्त्रस्य निश्चयः" इतिगारुडं सर्व
निबन्धानुद्धृतं सर्वथापि विदुषां वैदेशिकं कान्दिशीकं
वचनमुपक्षिपतः कलौ दशाहाशौचपक्षकक्षीकरणं त-
च्छिन्नमारचयति सचेतनानां चेतसि। तथाहि। यदिक-
लेरेवापत्तदा तन्निमित्तकमाशौचसङ्कोचनं सर्वेषामाव-
श्यकमिति क्षत्रियवैश्यादीनां स्वजात्युक्ताशौचानुष्ठान-
मपार्थकमिति सम्भवति लघूपाये गुरूपायत्वेनाननुष्ठान
लक्षणमप्रामाण्यं स्यादिति केषामपि तत्प्रवृत्तिर्नस्या
धीयसीतिमन्वाद्युक्तजात्याशौचपक्षः क्षतएवस्यादेका

न्तत: कलौ । वस्तुतस्तु "नवर्द्धयेद्दशाहानि" इति स्मृत्याद्दशाहवर्द्धनस्य निषिद्धतया प्रत्यवेयुरेव कलौ जात्युक्ताशौचमाचरन्त: सन्त इति साधु शास्त्रार्थनिरूपणं, साधु च सदाचार परिरक्षणमित्यमस्मा[illegible]। विद्वांस एव विदाङ्कुर्वन्तु । यदि च यस्य कुले शूद्रस्यापि सतस्तथाविधसङ्कोचाचारस्तस्य दशाहाशौचमनुमन्यामहे नापरस्य स्वजात्युक्ताशौचमाचरत: क्षत्रियादेरपीति ब्रूषे तदा कलिनिमित्तकाशौचसङ्कोचसमाचरणस्य नैतादृगुदीरित व्यवस्थानसम्भव: कलेर्निमित्तभूतस्य साम्येन कलेरादावेव सर्वैर्दशाहाशौचपक्षस्याऽवश्यमवलम्बनीयत्वापत्ते: यथा नियोगाद्यननुष्ठानादे: सर्वसाधारण्येन शिष्टै: कलाववलम्बनम् । किञ्चाऽशौचसङ्कोचे कलिकालस्वरूपापन्निमित्तकत्वाङ्गीकारे त्रेतादियुगान्तरीणाशौचसङ्कोचश्रवणमप्युपरुध्येत । तथाहि श्रीरामायणेऽयोध्याकाण्डेऽष्टसप्ततितमे सर्गे "ततो दशाहेऽतिगते कृतशौचो नृपात्मज: । द्वादशेऽहनि संप्राप्ते श्राद्धकर्माण्यकारयत्" अत्र महाराजभरतस्य दशाहेन शुद्धिस्तदनु श्राद्धाद्यनुष्ठानं चाऽनुपपन्नमेव स्यादाशौचसङ्कोचे कलिनिमित्तकत्वमुपगच्छतस्ते । प्रकृत

कर्मानुष्ठानौपयिकस्वास्थ्य व्यापादकापन्निमित्तक मा-शौच सङ्कोचमुपगच्छतामस्माकं तु भरतस्याशौच सङ्कोचनं त्रेतायुगेऽपि युक्तमित्यतिरोहितमेव । पितृविधुरस्य श्रीरामवनगमनमनुशोचतो मातरमप्यननुकुर्वतो नव्यराज्य भाराकुलस्य भरतस्यापत्तिः सर्वलोकप्रसिद्धैव, अयं चाऽर्थः पुनिरिहैव सुनिरूपितो यथा "विललाप महाबाहुर्भरतः शोकमूर्छितः" । इत्यादिना, नच प्रातिस्विकाशौचपक्षं कक्षयतां भरतस्य दशाहाशौचपक्षकक्षीकरणमुपपन्नमिति क्षोदीयस्तमं शङ्कारम्, अधुनैव दत्तोत्तरत्वात् । एतेन श्रीरामायणेपि दशाहाशौचपक्षो व्यवस्थापित इत्याशासोदकायितम् । अत एव श्रीरामायणटीकाकृतः "ननु द्वादशाहेन भूपालः क्षत्रियः षोडशेनि, इतिस्मृतेः कथं क्षत्रियस्य दशाहेनाशौचाऽत्यय इति चेन्न । क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिरितिपराशरोक्तेः । इत्येवमवोचन् इतरथा तु "नच शङ्कानचोत्तरम्" इति न्यायेन तदीयशङ्कासमाधानयोरनवसरहतिरेव स्यादिति नापरोक्षं चक्षुष्मताम् । भरतस्य दशाहाशौचाचारो नृपत्व

निबन्धनोऽत एवेहैव "कृतशौचो नृपात्मजः" इत्य-
भिहितं हेतुगर्भविशेषणं यतो नृपात्मजोऽत एव त-
थाऽन्वतिष्ठदिति हि निर्गलितं, स्मृत्यन्तरे नृपाद्य-
यापि सङ्कोचस्याऽभिहितत्वेन प्रजापालनपरायणस्य
नृपस्याशौच सङ्कोचो नाऽशास्त्रीयः । अथवा भरत-
स्याऽग्निहोत्रितयाप्याशौचसङ्कोचः शक्यकल्पनः त-
च्चप्रमाणं तु श्रीरामादिविवाहप्रकरणे "त्रीनग्नीं-
स्ते परिक्रम्य ताऊहुर्वधूःपृथक्" इत्यादिवाल्मीकीय-
मेवेति तु वयम् । परन्तु पुनरैतिहासिकार्थमनुवर्तमा-
ना महाराजदशरथस्य स्वर्गारोहणात्तृतीयदिवसे-
भरतस्यायोध्यायां देशान्तरादायातस्य सान्निध्यमा-
चक्षाणाः "ततोदशाहेऽतिगते" इति रामायणव-
चनेदाहदशाहमादाय स्वर्गारोहणदिनसंख्यया भरत-
स्य पूर्णमेवाशौचं मन्यन्ते। इदं तु परं विचारणीयमेवा-
ऽस्मिन्मते दाहदिनमारभ्यैव दिनसंख्यायाः परिकल्पनी-
यतया कथमिदं सङ्गच्छताम् । एषु पक्षेषु सदसत्त्वे पु-
नः सुधीभिः स्वयमूहनीये इति विस्तरभीरव उपेक्षाम-
हे॥ प्रकृतमनुसरामः, तस्मान्न कलिनिमित्तकत्वमाशौ-
चसङ्कोचे कलावाशौचसङ्कोचस्य प्रतिषिद्धत्वात् प्रत्युत

कर्मानुष्ठानौपयिकस्वास्थ्य व्यापादकापन्निमित्तक मा-शौच सङ्कोचमुपगच्छतामस्माकं तु भरतस्याशौच सङ्कोचनं त्रेतायुगेऽपि युक्तमित्यतिरोहितमेव । पितृविधुरस्य श्रीरामवनगमनमनुशोचतो मातरमप्यननुकुर्वतो नव्यराज्य भाराकुलस्य भरतस्यापत्त सर्वलोकप्रसिद्धैव, अयं चार्थः पुनरिहैव सुनिरूपितो यथा "विललाप महावाहुर्भरतः शोकमूर्छितः" । इत्यादिना, नच प्रातिस्विकाशौचपक्षं कक्षयतां भरतस्य दशाहाशौचपक्षकक्षीकरणमुपपन्नमिति क्षोदीयस्तमंशङ्कयम्, अधुनैव दत्तोत्तरत्वात् । एतेन श्रीरामायणेपि दशाहाशौचपक्षो व्यवस्थापित इत्याशासोदकायितम् । अत एव श्रीरामायणटीकाकृतः "ननु द्वादशाहेन भूपालः क्षत्रियः षोडशेन, इतिस्मृतेः कथं क्षत्रियस्य दशाहेनाशौचात्यय इति चेन्न । क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिरितिपराशरोक्तेः । इत्येवमवोचन् इतरथा तु "नच शङ्कानचोत्तरम्" इति न्यायेन तदीयशङ्कासमाधानयोरनवसरहतिरेव स्यादिति नापरोक्षं चक्षुष्मताम् । भरतस्य दशाहाशौचाचारो नृपत्व

निबन्धनीऽत एवे हैव "कृतशौचो नृपात्मजः" इत्यभिहितं हेतुगर्भविशेषणं यतो नृपात्मजोऽत एव तथाऽन्वतिष्ठदिति हि निर्गलितं, स्मृत्यन्तरे नृपात्मयापिसङ्कोचस्याऽभिहितत्वेन प्रजापालनपरायणस्य नृपस्याशौच सङ्कोचो नाऽशास्त्रीयः । अथवा भरतस्याऽग्निहोचितयाप्याशौचसङ्कोचः शक्यकल्पनः तत्प्रमाणं तु श्रीरामादिविवाहप्रकरणे "त्रीनग्नींस्ते परिक्रम्यताऊहूर्वधूःपृथगि" त्यादिवाल्मीकीयमेवेति तु वयम् । परेतुपुनरैतिहासिकार्थमनुवर्तमाना महाराजदशरथस्य स्वर्गारोहणतृतीयदिवसे-भरतस्यायोध्यायां देशान्तरादायातस्य सान्निध्यमाचक्षाणाः "ततोदशाहेतिगते" इति रामायणवचनेदाहदशाहसमाप्त्यायस्वर्गारोहणादिनसंख्यया भरतस्य पूर्णमेवाशौचंमन्यन्ते। इदं तु परं विचारणीयमेवाऽभिमतां दाहदिनमारभ्यैवदिनसंख्यायाः परिकल्पनीयतया कथमिदंसङ्गच्छताम् । एषु पक्षेषु सदसत्त्वे पुनः सुधीभिः स्वयमूहनीये इति विस्तरभीरव उपेक्षामहे॥ प्रकृतमनुसरामः;तस्मान्नकलिनिमित्तकत्वमाशौचसङ्कोचे कलावाशौचसङ्कोचस्य प्रतिषिद्धत्वात् प्रत्युत

युगान्तर एवाशौचसङ्कोचः श्रूयतइति नकिञ्चिदेतत्॥

नाप्यन्नदशाहप्रातिस्विकाशौचकल्पयोर्विकल्पपरिकल्पनं सहिएैच्छिकोवा पारिग्रहिकोवाव्यवस्थितिको-वास्यात् तन्नतावदाद्यः तस्यदोषाष्टकदूषितत्त्वात् तथाहि "व्रीहिभिर्यजेत,, "यवैर्यजेत" इति श्रूयते तत्र-व्रीहिघटित प्रयोगेप्रतीतयवप्रामाण्यपरित्यागः । अ-प्रतीतयवाप्रमाण्यप्रकल्पना तथैव यवघटितप्रयोगे यवो-पादाने परित्यक्तयवप्रामाण्योज्जीवनं, स्वीकृतयवाप्रा-माण्यहानिरित्येवंचत्वारोदोषाः । एवंव्रीहावपि च-त्वारोदोषाः । नचनैते पृथगवस्थितादोषाः किन्तु त-एवेति वक्तव्यम् । तथासति व्रीहियवसमुच्चयस्यलिप्यदृ-ष्टोत्पादप्रसङ्गान्नच तथासमुच्चये अदृष्टमङ्गीकुर्वते शा-स्त्रकुशलाइतिव्रीहौयवप्रयोगापेक्षयाभिन्नाएवचत्वारो-दोषाइत्यष्टकं दोषाणामैच्छिकविकल्पपरिकल्पने । तथाच निपुणाः " एवमेवाष्टदोषेपियद्व्रीहियववा-क्ययोः । विकल्पआश्रितस्तत्रगतिरन्यानविद्यते,, ॥ इ-ति नचाग्नेयादिवदिह समुच्चयसमाश्रयणरूपगतिसद्-भावेकथं गतिरन्या न विद्यते इत्यगतिकत्वकथनं संग-च्छतामितिवाच्यम् ॥ प्रक्रान्तक्रतुसाधनीभूतपुरोडा-

शात्मकृद्व्यपकृतितया वेदोदितयोः परस्परानपेक्षत्वे-
न स्वातन्त्र्येण स्वसंपाद्यकार्यसंपादकत्वेनोद्दिष्टयो र्व्री-
हियवयोःसमुच्चयकल्पने तद्विधायकशास्त्रयोरुभयोर-
प्युन्मथनप्रसङ्गात्।नहितत्रैकमपेक्षमाणमपरं शास्त्रं-
यवं व्रीहिंवा विदधातीतिन समुच्चयः शक्यकल्पनः। त-
स्मादिहैच्छिकविकल्पपरिकल्पने निरुक्तदोषाष्टकभी-
त्या अगतिकस्य व्रीहियवस्थलीयस्य विकल्पस्य परिक-
ल्पना अत्यन्तमसाधीयस्येव । नचापि पारिग्रहिकोद्वि-
तीयोविकल्पः शक्यकल्पनः। तस्य समश्रमसाध्येतिक-
र्तव्यताककार्यस्थलएवकल्पन संभवेन, प्रकृते लघुगुरूपा-
यसाध्यत्वेन विषमश्रमसाध्येतिकर्तव्यताक दशाहप्रा-
तिस्विका शौचपक्षयोः कल्पनाऽसंभवात् । अतएवतु-
स्मृतिः “यच्चस्यात्कृच्छ्रभूयस्त्वंश्रेयसोपि मनीषिणः॥
भूयस्त्वंब्रुवतेतच्चकृच्छ्राच्छ्रेयोह्यवाप्यते,, इति ततश्चप्र-
कृते “प्रभुःप्रथमकल्पस्ययोनुकल्पेप्रवर्तते नसांपार-
यिकंतस्य दुर्मतेर्विद्यतेफलम्,, इति । स्मृत्या प्राथमि-
ककल्पं जहतः फलानुत्पत्त्यभिधानेन, दशाहप्राति-
स्विकाशौचपक्षयोर्विकल्पपरिकल्पनाया अत्यन्तमसंभ-
वः॥ यथाचप्रातिस्विकाशौचकल्पस्य प्रथमकल्पत्वं नद-

शास्त्रपक्षस्य तथाविंगपपूपुर्ष प्रोषयिष्यामि चाग्रे तत्र तत्रेति तत एव तद्विविवेचनीयम् । न च वैवस्थितिक-स्तृतीयः कल्पोप्यवकल्पते तस्य समवलविधिबोधित-कर्मस्थल एव कल्पनेन प्रकृते तदयासंभवात् तथाहि "उ-दिते जुहोति 'अनुदिते जुहोति' "उदितानुदिते जुहो-ति' इति समवलविधिबोधितोदितानुदितादिहवन-स्य तैविधेः प्रामाण्यान्यथानुपपत्त्या व्यवस्थितविकल्पो व्यवतिष्ठते नचेह तथा दशाहाशौच समर्पक वचनस्य सर्वथैव त्वदुदितार्थे सन्दर्शितसंदर्श यिष्यमाणरीत्या अप्रामाण्य शङ्काकलङ्कितत्त्वेनाननुष्ठापकत्वात् नचा-संजातबिरोधस्य दशाहाचारस्य आउदयाचला दाचा-स्तमयपर्वताल्लब्धपदत्वेन कुतस्त्या दशाहाशौचबोधक स्मृतेरननुष्ठापकत्वशङ्का अतएवतु " यथैव श्रुतिमूल-त्वात्स्मरणानां प्रमाणता आचाराणां तथैवेति नविशे-षोवलावले ॥ ' इति प्राञ्चः प्रत्युत स्वोदितार्थानुष्ठा-ने पुरुषकृतिसापेक्षा पुरुषमुखमुदीक्षमाणा स्मृतिरेवा-चारतोदुर्बला अतएवाभ्यधायि निपुणैः " यद्वाचारब-लीयस्त्वं फलस्यत्वात्प्रतीयते । फलाद्वियुज्यमानं हि प्रमाणं दुर्बलं भवेत् ॥ श्रुतिराचारमूलं या फलस्था-

सोपलभ्यते। यावद्धिस्मरणं दृष्ट्वा श्रुतिरन्यानुमास्यते॥ तावत्तद्व्यात्मकः पूर्वमाचारः प्रतितिष्ठति । प्रतिष्ठितस्य वाधश्च कीदृशः परिकल्प्यताम् ". इत्यतिचोदीयः प्रक्रमम् प्रमाणलक्षणे स्मृतेरेवाचारमपेक्ष्य प्राबल्यव्यवस्थापनेन तदुक्तेरकिञ्चित्करत्वात् अतएव पूर्वमीमांसानदीष्णाः 'सप्रत्ययप्रणीताहि स्मृतिः सोपनिबन्धना । तया श्रुत्यनुमानंहि निर्विघ्नमुपजायते ॥' आचारात्तुस्मृतिं ज्ञात्वा श्रुति विज्ञायते ततः । तेनद्व्यन्तरितंतस्य प्रामाण्यं विप्रकृष्यते । नह्येकैव श्रुतिः काचिदाचाराणां प्रवर्त्तिका ॥ भिन्नाभिर्विप्रकीर्णत्वान्नास्मृताभिःप्रवर्तनम्। नैकप्रपाठकेनैव ह्याचाराणांविधिस्थितिः । क्वचित्प्रकरणे कश्चित्कथंचिदुपलभ्यते । एवंचविप्रकीर्णानामशक्यैकत्र संहृतिः । स्मृतिमेवहृदांसक्ता तस्मादस्त्यन्तरास्मृतिः ॥ तेनाचारः स्मृतिं यावदनुमातुं प्रवर्तते । स्मृतिर्लब्धश्रुतिस्तावद्धर्ममेवावधारयेत् ॥ तस्मादाचारेभ्यः स्मृतिर्बलीयसीसन्निबन्धने,ति ॥ तस्मादाचारः प्रयोजितस्वाचारःस्मृतितःप्रबलः समानबलोवेति कीरैकभाषितंहेयमितिविदुषांपन्थाः । अतएव 'तस्मादर्थसुखाङ्गत्वान्ना-

चारेष्वस्तिधर्मता । वैश्यानां सेवकानां वावैद्यानां नगरेषुवा । चरित्राणां तथाचार्थसुखाङ्गत्वंतथास्त्विह ॥ तस्माच्छ्रुतिस्मृतीएवप्रमाणेधर्मगोचरे । शीलाचाराद्यसतुष्टीनांगोष्ठीहास्यादितुल्यता ॥ इति तस्मादुदितानुदितादिवाक्यत्रदिह न विकल्पकल्पना किंच "शौचाशौचेप्रकुर्वीरन् शूद्र वद्वर्णसंकराः" इतिस्मृतौवर्णसंकराणां शूद्रवदाशौचादिविधेरुक्तत्वेनापि न विकल्प कल्पना अन्यथाकुलदेशादि भेदेन त्वदुदितरीत्यासर्वेषामेव दशाह संभवेनशूद्रवदित्यतिदेशासंभवात् नच यत्रदेशेशूद्राणां दशाहाशौचाचारस्तत्रवर्णसंकराणामपि सएववक्तव्यइतिन कापिक्षतिरितिवाच्यं तथासति "वैश्यवच्छौचकल्पश्च"तिमनोः सकलधर्मशास्त्रीयनिबन्धानांचोपरोधापत्तेरित्यस्मदीय त्रैवर्णिक*सर्वस्वे सुस्फुटमिति सर्वं चतुरस्रमवदातंचेति विभावयन्तुतत्रभवन्तएवविद्वांस इत्यलंवाचांविसर्गेण निसर्गेण प्राक्षेप्वितिशम् शौः

---

* मन्निर्मितोयंग्रन्थः ।

॥ श्रीः ॥

श्रीपतये नमः

यद्यपि कश्चिदाशौचव्यवस्थाभिषेणपुराणीं चातुर्वर्ण्यसंस्थितिमभनगत्यानकृच केवलंनैजमनैपुणमपुण्यंपृतितरापुराणार्थं प्रचारणाऽनभिज्ञजनप्रतारणपुरस्सरोनिबबन्धचपूर्वोत्तरनिजसन्दर्भं विघटितार्थघटितमत्यन्तमसन्तंप्रबन्धमिति नतत्कथमपि कोविदानां कथनावसरःकथावसरोवाल ब्धभूस्तथाप्यनभिज्ञजनवञ्चनं माभूदिति काशिकप्रगुणप्रधानविद्वद्गणसमादेशेन धनिकगणधुरीणेन विविध विद्याप्रवीणेन निजधर्मसंरक्षणदक्षिणेन सर्वथापि दाक्षिणेनाख्यानांगणेन च भृशंधर्मतत्त्वनिर्णये ऽभ्यर्थिताः प्रवर्तामहे, माध्यस्थ्य दृशैवा चरमस्तत्परीक्षणायेति विद्वांसोविदाङ्कुर्वन्तु । यत्तु

"अथ केषुचिद्वैश्यवंशेषु बहुकालादारभ्यानुभूयमानंदशाहमेवाशौचंदेशविशेषे चातुर्वर्ण्यसाधारणेनापिचिरेणप्रवृत्तं च तावदेवाशौचं शास्त्रसम्मतं भवति नवेति सन्देहे॥ रुद्रधरादिगौड़निबन्धानुसारेण श्राद्धाद्यनुष्ठातॄणां पञ्चदशाहाशौचमभ्युपगच्छतां वैश्याना-

साद्यश्राद्धमेकादशेऽन्हि युक्तं नवेति च संशये क्रमेण दि-ङ्क्रान्तौ" इति

तत्रेदमवधेयं द्वितीयप्रश्ने "रुद्रधरादिगौडनिबन्धानुसारेण" इतिपदसमुदायप्रश्ने पक्षेषां तदनुयायितया तदुक्तार्थानुष्ठानस्यावश्यंभाव मवधारयति । ततश्च प्राथमिकप्रश्नार्थे।प रुद्रधराद्यनुयान मुचितमितितदीयपद्धत्या व्यवहरतां तदुक्ताशौचानुष्ठान मप्यावश्यकमित्येकदेशे वैश्यानां रुद्रधरानुयानकथन मङ्गीकरतीयग्रहग्रस्तमिति, द्वितीयप्रश्ने रुद्रधरानुयायिता प्रतिपादनमधिकं न्यूनं वा तत्प्राथमिकप्रश्ने, किञ्च रुद्रधरादि गौडनिबन्धेष्वनेनादिपदेन के तव सञ्जिघृक्षिताः; त्वदभिमतार्थ मभिदधतो गौडा यावन्तो गौडा वा तत्राद्येकस्य हेतोस्त एवेति प्रश्ने यतो मदभिमत मर्थमभिदधतीत्युक्तौ हासास्पदतैवावशिष्यत इति यावन्त एव वक्तव्यास्ततश्च निर्णयामृत मदनरत्न श्राद्धकाशिकापरार्कमिताक्षराप्रभृतिगौडग्रन्थेष्वा सेतुहेमाचलमकुण्ठप्रचारेषु एतद्देशीयराजकीय धर्माधिकरणे ष्वप्यसाधारण्येन प्रमाणपदास्पदतयाव्यवस्थापितेषु शिष्टपरिग्रहविशुद्धिशुद्धेषु शौचप्र.णे युक्त्या शास्त्रेण

च व्यवस्थापितस्तत्र ते कीदृशी विप्रतिपत्तिर्गौडपुङ्गवस्य सत इति परं वैदेशिका अमुष्यार्थस्य वयम्। यच्चापि मिताक्षरायां दाक्षिणात्य प्रणीतत्वनिबन्धनस्ते पुनरविश्वासः सोप्यप्रामाणिकः दाक्षिणात्याभिमतानामर्थानां तत्रतत्र निराकरणस्यापि मिताक्षरायामसम्यक्दर्शनात्।* किञ्चायं पण्डितप्रवरो विक्रम महाराजराजधान्यां नर्मदायाउत्तरभागसंस्थितायामुज्जयिन्यां त्वदीयगौड़ाङ्गणगत एवाभूदितिकुतस्त्याते परकीयताबुद्धिः। किञ्चायं स्वीयग्रन्थान्ते "विज्ञानेश्वर पण्डितः। इति स्वीयाभिज्ञानसकार्षीदित्यपि ते कदाचिद्गौड़ताम्रतिं द्रढयेद्। किञ्च विक्रममहाराजोपि भवतामिव यजमानेष्वन्यतमः कश्चिदासीदिति मे पुनर्दुर्बला मनीषा यतो गौडदेशेषु विक्रमवत्सरप्रचारो दक्षिणेषु तु शालिवाहनशकप्रचारः। किञ्च गौडदेशेष्वेव राजकीयधर्माधिकरणेष्वकुण्ठप्रचारा गौडगृहेष्वपि प्रचारितस्त्रोदिताचारा च मिताक्षरेतियत्रक्वचन तद्-

---

* अयंचैतिहासिकोर्थो नापरोक्षो विदुषां वृद्धसमृद्धार्जितसद्विद्यानां भवेदयमगोचरो हठाभ्रष्टकतिपयपङ्क्तीनां महापण्डिता नाम् ॥

दितार्थाननुष्ठानं नागौडग्रन्थता संपादकम् । तदेवं गौड धुरन्धराणां भवतां विज्ञानेश्वरपण्डितोऽपि स्वीय एवेति तदुक्तावाश्वास आवश्यक इति द्वितीयप्रश्ने रुद्र-धरादि गौडेत्यन्तमनभिज्ञ जनवञ्चनमात्रम् । यदि च द्वितीयप्रश्ने रुद्रधरेत्यादिविशेषणेन न गौडा नापिदा-क्षिणात्याः सन्दर्भकृतोऽभिधीयन्ते, परन्तुशास्त्रीयं-यौक्तिकार्थमभिदतः सर्वेऽपीत्युच्यते तदोमिति ब्रू-मः । यथाचास्मदभिमतोऽर्थोयौक्तिकोगौडग्रन्थाभि-मतश्च तथा द्वितीयप्रश्नार्थनिराकरणावसरे प्रप-ञ्चयिष्यते ॥ किञ्च प्राथमिकविप्रतिपत्तिपूर्वभा-गे "बहुकालादारभ्य" इति, द्वितीयभागे च "चि-रेण प्रवृत्तम्" इतिद्वयमपिचव्यर्थं नच तद्दशा-हाशौचकल्पस्य श्रुतिसम्मतत्वकल्पकत्वेन सार्थकमि-ति साम्प्रतम् । आचारस्य प्रत्यक्षोपलब्ध विभिन्ना शौचबोधकमन्वादिस्मृतितो दुर्बलत्वेन तदयश्रुत्यनुमापकत्वात् । नच स्मृत्याचारयोःस्वमूलवेदानुमाप-कत्वसाम्यात्समबलत्वमिति वाच्यम् । होलकादिस-दाचारस्य मन्वादिस्मृतिवद्वेदानुमापकत्वायोगात् । नहीदानींतनाः शिष्टाः मन्वादिवद्देशकालविप्रकृष्टं वे-

इंपरःसहस्रप्रविभागभिन्नं दिव्यज्ञानेन साक्षात्कर्तुं मीमांसते येनाधुनिकाचारोपि वेद मनुमापयेत् । एवं च प्रकृतविप्रतिपत्तिस्थबहुकालेत्यादिपदद्वयसन्दर्शितस्वदार्ढ्यस्याचारस्य स्मृत्यनुमापकतैव वक्तव्या ततश्च यावदाचारःस्मृतिमनुमापयेत्तावत्प्रत्यक्षा मन्वादि स्मृतिरर्थमनुष्ठापयेदितिविप्रकृष्टः पुनराचारः । यथाच सामान्यतः क्षत्रियादीनां दशाहाशौचबोधिका न कापि स्मृति स्तथाऽ नुपद मेवोपपादयिष्यामः । तत्रस्तुष्टूक्त मक्षरमीमांसकैः " आचारात्तु स्मृतिं ज्ञात्वा स्मृतेश्च श्रुति कल्पनम् । तेन द्व्यन्तरितं तेषां प्रामाण्यं विप्रकृष्यति" इति । तस्मात्प्रत्यक्षस्मृतिबाधितत्वेन वैश्यानां दशाहाशौचाचारो न स्मृतिप्रकल्पनप्रविष्णुरिति प्राथमिकविप्रतिपत्तौ बहुकालेत्यादिपदद्वयनिक्षेपो ऽर्थक एवेति सूक्ष्मदृशा निरीक्ष्यताम् ॥ यत्तु

"भवति दशाहाशौचं शास्त्रसम्मतं तेषां तथाचाङ्गिराः "सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा दशाहाच्छुद्धिरेतेषामितिशातातपोऽब्रवीत् ,, इतिवचनमुपन्यस्य सर्ववर्णाशौचसाङ्कर्यसंकीर्त्तनं तत्त्वर्थानभिज्ञतानिबन्धनं ॥ तेन सर्ववर्णसाधारण्येना शौचाप्रसापणात् न-

ऽपि सर्वेषि प्रमापितार्थविरुद्धार्थाभिधानमेकस्याः स्मृतेः कल्पनीयं नच कुलदेशाचारो विरोधविनिवर्तकस्तस्यैवाप्रामाणिकत्वादितरथा विचारस्यैवोच्छेदात् नह्याचारएवाप्रामाणिकत्वसमुपस्थितौ तेन स्मृतिकलङ्कविनिवृत्तिसंभवो, नच मन्त्रवाक्यं सर्ववर्णानां दशाहाशौच बोधकं सर्वत्रप्रातिस्विकाशौच पदस्यैवाभिहितत्वात् "आशुच्यं दशरात्रं तु सर्वत्राप्यपरेविदुः" इत्यादीनां तु ॥ निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणः त्रयम्„ इत्युत्तरार्द्धानुरोधेन " शयाना भुञ्जते यवनाः" इत्यादौ भोजने शयनसमानकालीनताया इवकर्मत्रयत्याग समानकालीन शुद्ध्यभिधायकत्वेन असति बाधके सिद्धं साध्यायो पयुज्यतइति न्यायेन पूर्वसिद्धकर्मत्रयत्यागस्या शौचसंकोचहेतुताया उक्तत्वेन, दशरात्रानन्तर माशौचवतामपि क्षत्रियादीनां तत्तत्कर्मानुष्ठानौपायिक शुद्ध्यर्थकताया एवाभिमतत्वात् नच कर्मत्रयत्यागस्याशौचसङ्कोचकत्वे दशरात्राभ्यन्तरेपि क्षत्रियादीनां स्वकर्मानुष्ठानौपयिकी शुद्धिरङ्गीक्रियतामितिवाच्यं वचनविन्यस्तसमस्तनिजधर्मतत्त्वानां तादृशवचनविरहेणैव दशाहाभ्यन्तरे कर्मानुष्ठानौपयिक्याः क्षत्रियादीनां शुद्धेरनङ्गीका-

रात् अतएव तु ब्राह्मणानां दशरात्राभ्यन्तरेऽपि स्वकर्मानुष्ठानौपयिकीं शुद्धिमभिदधी वचनसत्त्वात् तथाहि मनुः "न वर्द्धयेदघाहानि प्रत्यूहेन्नाग्निषु क्रियाः । नच तत्कर्म कुर्वाणः सनाभ्योप्यशुचिर्भवेत् ॥ इति अत्र कर्मकुर्वाणो नाशुचिरित्यनेन कर्मानुष्ठानसमानकालीनशुद्ध्यभिधानेन कालान्तरे पुनरशुद्धएवेति स्फुटमेव । केचित्तु निरुक्तमानवे अविशेषादग्निमतां क्षत्रियादीनामपि तावत्कर्मानुष्ठानकालीनशुद्धिर्दशाहाभ्यन्तरेपि मनोरभिमतेति प्राहुः॥ वयं तु गुणवत्तमानां क्षत्रियादीनामपि तावत्कर्मानुष्ठानौपयिकीं दशाहाभ्यन्तरेपि शुद्धिमभिदधमो मानवे विशेषाश्रवणात् याच "आशुच्यं दशरात्रं तु इति दशरात्रानन्तरं क्षत्रियादीनां कर्मानुष्ठानौपयिकीआशौचनिवृत्तिः सा पुनर्नीतिवगुणवद्विषया मन्वनुमता दशाहाभ्यन्तरीणाशौचनिवृत्तिस्तु गुणवत्तम क्षत्रियादिविषयेत्याचक्ष्महे युक्तं चैवमेव दशाहैकादशाह द्वादशाह षोडशाहा शौच कल्पानां क्षत्रिये, एकादशाह द्वादशाह षोडशाह विंशत्यहीनाशौचकल्पानां च वैश्ये निबन्धकारै र्व्यवस्थापनात् अयं चार्थोऽग्रेऽस्माभिः प्रपञ्चयिष्यतइति नेह विस्त-

रोयुक्तः। तस्मात् "मासेनैवतु शुद्धिःस्यात्," "शुद्धिर्भवति-नान्तरा," "विप्रःपञ्चदशैवतु," इत्यादिस्मृतिभिः प्रातिस्विकाशौचस्य सावधारण मवधापनान्न्यूनाधिकाशौच पक्षाणां च गुणवत्तम गुणवत्तर गुणवद्विषयकत्वेन निर्गुण निर्गुणतरनिर्गुणतम विषयकत्वेन व्यवस्थापनाच्च (सर्वेषामेवर्णानामित्यस्य न सामान्यतः सर्ववर्णाशौचह्रासबोधकत्वं यश्चास्य वास्तवोऽर्थः स निरूपयिष्यते एवमेव तु हारलतायामनिरुद्धभट्टेन ॥

तत्रदेवलः "शूद्रस्य त्रिंशता शुद्धिर्विंशत्या दिवसैर्विशः। राज्ञः पञ्चदशाहेन दशभि र्ब्राह्मणस्य च ॥ आशुचं दशरात्रं तु सर्वेषा मपरे विदुः। निधने प्रसवे चैवपश्यन्तः कर्मणः क्षयम्" इति, नित्यनैमित्तिककर्मानुष्ठानवेदाग्निसंयोगरहितयोर्यथेष्टाचरणशीलयो रत्यन्तनिर्गुणयोः क्षत्रियवैश्ययोः पञ्चदशाह विंशत्यहाः। अत्यन्तोत्कृष्टगुणानांच स्वकर्मानुष्ठान हानौ मनः पीडामनुभवतां क्षत्रियविट्शूद्राणां दशरात्र माशुचम्॥" अयमप्याशौचसङ्कोचः स्वकर्मानुष्ठानार्थ एव, सर्वाशौचनिवृत्तिस्तु मनूक्तकालावधिनैव तथाचायमेवाशौचह्रासः। अत्र हेतुमाह "पश्यन्तः कर्मणः क्षयमिति।

अत्र गौतमः "शावाशौचं दशरात्रमन्यत्विग्दीक्षितब्रह्म-चारिणां सपिण्डानाम् । एकादशरात्रं क्षत्रियस्य द्वादशरात्रं वैश्यस्यार्द्धमास मेकमासं वा शूद्रस्य,, इति अस्यार्थः । ऋत्विग्दीक्षित ब्रह्मचारिव्यतिरिक्तानां ब्राह्मणानां सपिण्डानां दशरात्र माशौचम् । ऋत्विग् यज्ञमध्यस्थो याजनं कुर्वाणः । दीक्षितः सोमयागेन, यजमानो दीक्षणीयाद्यज्ञात्पर मायज्ञसमाप्तेः सम्यगधीतवेदस्याग्निहोत्रिणः क्षत्रियस्यैकादशाहम् । वैश्यस्याप्येवं गुणविशिष्टस्य द्वादशाहम् ॥ पराशरः

क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिः । तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवाप्नुयात्,,

क्षत्रियवैश्यावुक्त गुणावेव किन्तु क्षत्रियस्य वेदार्थ-ज्ञानमधिकं यदि तदैवं मनुः

" शूद्राणांमासिकंकार्यं वपनंन्यायवर्तिनाम् । वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं तु भोजनम् "

न्यायवर्ती स्वीयमहाभ्युदयहेतुट्टक् स्वधर्मबुद्ध्या तत्परेण मनसा अव्याजेन ब्राह्मणशुश्रूषानमस्कारसन्तक पञ्चमहायज्ञानुष्ठाता अभक्ष्यभक्षणनिवृत्तो निषिद्धानारणश्चैवं विधस्य शूद्रस्य मनूक्तेनैव वैश्यवत्पञ्चद-

शाहेन शुद्धिः एवंविधस्यैव शूद्रस्य प्रतिमासं वपनं क्षौरमथवा वपनं पिण्डनिर्वापः। अमावास्याश्राद्धमिति यावत्। द्विजोच्छिष्टभोजनमप्येवंविधस्यैव शूद्रस्य । यत्तु "न शूद्रायोच्छिष्टं दद्यात्" इति मनुवचनं तदेवं विधव्यतिरिक्तशूद्रविषयम् । अयमप्याशौचसङ्कोचो ब्राह्मणशुश्रूषार्थ एव नतु पञ्चमहायज्ञानुष्ठानार्थोऽपि पूर्वोक्तेन तस्यातिरस्तत्वात्। यत्तु देवलेन दशरात्र. शूद्रस्योक्तं तद्ब्राह्मणस्य परिचारकान्तराभावे। शातातपः

"शूद्रो विंशतिरात्रेण शुध्येत्तु मृतसूतके।"

इदं च पूर्वोक्तानां गुणानामसम्पूर्णे बोध्यम्। पैठीनसिः षोडशाहं क्षत्रियस्येदं चात्यन्तनिर्गुणस्य परपीडादिकारित्वे। ब्रह्मपुराणे। "शौचाशौचेप्रकुर्वीरन् शूद्रवद्वर्णसङ्कराः,, शूद्रवदिति मासाशौचग्रहणां वर्णसङ्करा अपकृष्टवर्णेनोत्कृष्टस्त्रीषु जाताः इति,,

इत्येवमादिना प्रबन्धेन स्वकृं ,,निधनेप्रसवेचैव पश्यन्तः कर्मणः क्षयम्,, इत्येतस्यार्थो निरूपित इति न तस्य सर्ववर्णाशौचसङ्करकारकत्वमिति निपुणा एव विभावयन्तु॥ वयं तु सर्वेषामेव वर्णानां मृतके सूतकेतथा

इत्यादि न सर्ववर्णसाधारण्येनाशौचसङ्कोचकत्वं तथासत्यङ्गिरसः प्रतारकत्वापत्तेः तथाहि शातातपीये "एकादशाहाद्राजन्यो वैश्यो द्वादशभिस्तथा । शूद्रो विंशतिरात्रेण शुध्यति मृतसूतके,, इत्यभ्यधायि पृथगाशौचमिति यद्यङ्गिराः साङ्कर्यमाशौचस्य शातातपेनोचत इति वदेद् वश्यमविश्वसनीयःस्यादिति न तस्य सर्ववर्णसाधारणाशौचसङ्क्षेपकत्वं परन्तु क्षत्रियादि कन्यकासु ब्राह्मणाद्युत्तमजातानां ब्राह्मणादिनैव तु पित्रासमं वसतां क्षत्रियादीनां सर्वेषां दशाहाशौचव्यापकत्वमिति नाङ्गिरसः प्रतारकत्वं नापि तत्स्मृतेः पूर्वोत्तरप्रकरणाननुग्रहो नापि दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति-स्मृतिस्थस्य "एतेषाम्" इति पदस्य वैयर्थ्यं वैसरस्यस्य ब्राह्मणाद्युत्तमजातानां चयाणा ममीषां क्षत्रियादीनामित्येतदर्थकतया क्षत्रियादेः क्षत्रियाद्युत्पन्नक्षत्रियादिवालव्याहत्त्यर्थत्वात् । एवमेव तु मन्वाद्यष्टादशस्मृतीनामकोपसम्पादनम् । अपरार्क मदनरत्न मदनपारिजात निर्णयामृत हारलता मिताक्षरा शुद्धितत्त्व शुद्धिविवेकादिमहानिबन्धकृतामविरोधसम्पादनं च । अत एव त्वापस्तम्बः

"क्षत्रियविट्शूद्र जातीनांयदाप्तंतकसूतके तेषां तु-पैतृकंशौचंविभक्तानांतु मातृकम्" इति ब्रूमहे।

एतत्तत्त्वं तु पुनरग्रे प्रपञ्चयिष्यते । यत्तु

गारुडेपि "सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके त-था। दशाहाच्छुद्धिरित्येष कलौशास्त्रस्यनिश्चयः इति अग्रेपिचतत्रैवइत्येतत्, तत्र "सर्वेषामेववर्णानां सूतके मृतकेपि वा। दशाहाच्छुद्धि रित्येष कलौशास्त्रस्य-निश्चयः" इति वचनं तु सर्वथैव कृत्रिममिति "सर्वेषा-मेव" इत्याद्याङ्गिरसवदेतस्यार्थापवर्णन मयुक्तमित्यु-पेक्षामहे। अग्रेपि चतत्रैवेत्यादिना प्रदर्शितानि॥

द्वादशाहे त्रिपक्षेवेत्यादिना सपिण्डीकृति कालान-भिधाय "मयातु प्रोच्यते तच्च शास्त्रधर्म्मानुसार-तः। चतुर्णामेववर्णानां द्वादशाहे सपिण्डनम्॥ आ-नन्त्यात्कुलधर्माणां पुसाञ्चैवायुषः क्षयात्॥ अस्थिर-त्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते॥ व्रतबन्धोत्सवा-दीनि व्रतस्योद्यापनानिच॥ विवाहादि भवेन्नैव मृतेच-गृहमेधिनि॥ भिक्षुर्भिक्षान्नगृह्णाति हन्तकारोनदि-यते॥ नित्यंनैमित्तिकंलुप्येद्यावत्पिण्डन्नमेलयेत्॥ क-र्मलोपात्प्रत्यवायी भवेत्तस्मात्सपिण्डनम्॥ निरग्निकः

साग्निको वा द्वादशाहे समाचरेत् ॥ इति वचांस्यपि तत्रैव, प्रामाणिकनिबन्धेषु सपिण्डीकरण प्रकरणावसरे तेषा मनुल्लेखात् । पठ्यमानपुस्तकेष्व नुपलम्भात् पौराणिकैरप्यनादरणात् । प्रामाणिक स्मृतिवचोनिचयविप्रतीपार्थाभिधानात्, प्रत्युत

" सपिण्डीकरणं वक्ष्ये पूर्णेऽब्दे तत्त्वयीश्वनि । सपिण्डीकरणं कुर्य्यादपराह्णेऽपि पूर्ववत् " इति तिथितत्त्वसंवत्सरकौमुद्यादि धृतगारुडेनैव विसंवादाच्च तत्र यथा खमुख्यकालं द्वादशसु मासिकेष्वनुष्ठितेषु पूर्णे संव्वत्सरे तदूर्द्धमौत्सर्गिकोऽनग्निकस्य सपिण्डीकरणाय मुख्य :कालो निर्द्दिष्टस्तथाहि पुलस्त्यः "निरग्निः सह पिण्डत्वंपितुर्मातुश्च धर्मतः । पूर्णसंवत्सरे कुर्य्याद्वृद्धिर्वीयदिवाभवेत् । हेमाद्रौमार्कण्डेयपुराणम् "अथ संवत्सरे पूर्णे यथावत्क्रियते नरैः । सपिण्डीकरणं सम्यक्तत्रापि विधिरुच्यते । नागरखण्डेपि "ततः सपिण्डीकरणं वत्सरादूर्द्धतः स्थितम् । वृद्धिर्वागामिनी चेत्स्यात्तदर्वागपि कारयेत् । मदनरत्ने भविष्यपुराणम् 'सपिण्डीकरणं कुर्याद्द यजमानस्त्वनग्निमान् । अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णेऽब्देभरतर्षभ" इति । रघुनन्दनधृ-

तविष्णुपुराणं च संवत्सरमधिकृत्य "सपिण्डीकरणं तस्मिन्काले राजेन्द्र तच्छृणु एकोद्दिष्टविधानेन कार्यं तदपि पार्थिव"। मदनरत्ने उशनाः "पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे आधानाद्युपसम्प्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात्" गोभिलोपि "पूर्णसंवत्सरे षण्मासे त्रिपक्षे वा यदहर्वृद्धिरापद्येत" इति तदेवं मान्यनिबन्धेषु सर्वत्रानग्निकस्य प्रेतस्याऽनग्निकेन सपिण्डीकरणे संवत्सरकाल एव मुख्यत्वेनावधारितः। किञ्च सपिण्डीकरणस्य षोडशश्राद्धपूर्वकतया तेषां च मुख्यसंवत्सरात्मककालनिर्वर्तनीयतया षोडशश्राद्धान्यविदधानस्य वृद्ध्यनुपस्थितौ कथं द्वादशाहे षोडशश्राद्धापकर्षं विना सपिण्डीकरणमुपपद्यतां तथाहि निर्णयामृते "श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैव कुर्यात्सपिण्डनमिति" अपरार्के पैठीनसिरपि "सपिण्डीकरणादर्वाक्कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश। एकोद्दिष्टविधानेन कुर्यात्सर्वाणि तानि तु॥ प्रेतसंस्कारकर्माणि यानि श्राद्धानि षोडश। यथाकालं तु कार्याणि नान्यथा मुच्यते ततः। इति "श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम्, इति वायवीयं। वृद्धिं विना मासिकानामपकर्ष

स्य प्रतिषिद्धो यथा मदनरत्ने शाट्यायनः "अन्तरेणैव
योऽब्दिं प्रेत श्राद्धानि कर्षति । स श्राद्धी नरके घोरे
पितृभिः सह पच्यते" इति मासिकश्राद्धस्य च मुख्यः
कालो निरधारि हारीतेन हेमाद्रौ तिथितत्त्वे च "मु-
ख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुंप्रति द्वादशाहेनवा कु-
र्यादेकाहे द्वादशाथवा" इति, अयमर्थः मासिकश्राद्धस्य
मुख्यः कालो मासएव तदशक्तस्य तु अपरे काला
स्तथाच परमापूर्वोत्पत्तावङ्गापूर्वस्य हेतुतया ऽङ्गानामपि
चमुख्यानामेव मुख्यापूर्वजनकत्वेनाऽपकृष्यानुष्ठितैर्मा-
सिकैरविकलाङ्गापूर्वाजननेन कथमिव ब्राह्मणस्यापि
द्वादशेऽहनि सपिण्डीकरणेन परमापूर्वोत्पत्तिः क्षत्रि-
यादीनां तु स्वस्वजात्युक्ताशौचानुष्ठानस्यावश्यकत्वेन
पुनरसम्भूतैव द्वादशेऽहनि सपिण्डीकृतिरिति मात्सर्य-
मपसार्य त्वमेवावेचस्व यत्तु
इत्यनेनसामान्येन चातुर्वर्ण्यस्य द्वादशाहएव मुख्यः
कालः सपिण्डनाय व्यवस्थापितो नहि पञ्चदशाहाशौ-
चादिकल्पेद्वादशाहेसपिण्डनंसम्भवति। तस्य दैवपूर्वक-
त्वेनाशौचमध्ये कर्तव्यताया असम्भावितत्वात्, इत्येवं
वदताऽनेन धर्मशास्त्रमर्माविधा पण्डितधुरीणेन स्वच्छं

द्वादशाहे सपिण्डीकृत्यन्यथानुपपत्त्या सर्ववर्णसाधारण्येन दशाहाशौचकल्प एव मुख्यतया कल्पित इत्यग्रेतनेन निजेनैव दशाहप्रातिस्विकाशौचपक्षयोर्देशादिव्यवस्थया वक्ष्यमाणेन मुख्यत्व व्यवस्थापनेन विरोधः। नच येषां देशे कुले वा दशाहाशौचानुष्ठानं तेषामेव द्वादशाहे सपिण्डीकरणं मुख्य मपरेषां तु पुनरन्यथेति पक्षद्वयस्यापि मुख्यत्व संरक्षणे क्षमोऽस्मीतऽहमहमिकया प्रवर्तनीयम्। तथा सति " नहि पञ्चदशाहाशौचादि कल्पे द्वादशाहे सपिण्डनं सम्भवति तस्य दैवपूर्वकत्वेना शौचमध्ये कर्तव्यताया असम्भवात् इत्यस्य "सामान्येन चातुर्वर्ण्यस्य द्वादशाहएव मुख्य :काल :सपिण्डनाय व्यवस्थापित: " इत्यस्य च सावधारण त्वदभिधानस्यैवा साङ्गत्यापत्तेरिति निजाभिप्रायावधारणा विधुरोमन्दस्यापि पुनरमन्द हसनीयोऽयमिति मे विधारणा

यस्तु "नहि पञ्चदशाहाशौचकल्पे द्वादशाहे सपिण्डनं सम्भवति तस्य दैवपूर्वकत्वेना शौचमध्ये कर्तव्यताया असम्भावितत्वात्" इतिभ्रम:

अत्रहि सपिण्डी करणव्यापकं दैवपूर्वकत्वं दैवपूर्वक-

त्र व्यापकं चाशौचान्तरालकालाननुष्ठेयत्वमिति व्यापकनिवृत्त्या व्याप्यनिवृत्तिरिति न्यायेना शौचान्तरालकालानुष्ठेये प्रेतश्राद्धादौ दैवपूर्वकत्वनिवृत्तिस्तया च स्वव्याप्यस्य निवृत्तिरिति रीत्याऽयं भवदीयग्रन्थार्थो योजनीयः । सचातत्यन्तमसमञ्जसः । तथाहि । आशौचान्तरालकालानुष्ठेयेपि औपरागिकश्राद्धे देवपूर्वकत्वानिवृत्तेः औपरागिकश्राद्धस्य पार्वणत्वेन पार्वणस्य दैवपूर्वकत्वावश्यम्भावात् । आशौचे औपरागिकश्राद्धस्यानुष्ठेयत्वे प्रमाणं च कालादर्शे आङ्गिरसं "सर्वे वर्णाः सूतके राहुदर्शने स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाठ्यविवर्जितम् । सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने । तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते । इति च वृद्धवासिष्ठम् ॥ स्कन्दपुराणेपि "सूतकेपि नसूतकं राहुदर्शने तावदेव भवेत्तत्र यावन्मुक्तिर्न दृश्यते इत्यादि ॥ एवमसमावास्याश्राद्धकारि शूद्रस्याशौचान्तरालकालेएव सपिण्डीकरणमिति न तत्र दैवपूर्वकत्वनिवृत्तिः । आशौचमध्येपि शूद्रस्य सपिण्डीकरणे प्रमाणं च सपिण्डीकरणं कर्तव्यमित्यनुवृत्तौ विष्णुः "मन्त्रवर्जं हि शूद्राणां द्वादशेऽहनि कीर्तितम् इति । अतएव

अमावास्याश्राद्धकारिशूद्रविषय मेतदिति वृद्धाः इति मदनरत्ना परार्क हेमाद्रि कल्पतरु विधानपारिजात-प्रभृतयः। आशौचमध्ये शूद्रस्य सपिण्डीकरणं वाच-निकम् इति साधु ते धर्मशास्त्रालोचनं विशुबुद्धेरिति विज्ञा एव विजानन्त्विति शम् ।

यापि 'सर्वेषामेव वर्णानामाशौचान्ते सपिण्डनमिति निर्णयामृते कात्यायनोक्तेश्च,,

इति कात्यायनोक्तेः स्वपक्ष व्यवस्थापकत्वावगतिः सा-प्ययुक्ता आशौचान्त पदेन स्वस्वजात्युक्ताशौचान्तकाल-स्याभिप्रेततया भवदभिमत दशाह मात्राशौच पक्षस्य-ततोऽसिद्धे व्यक्तिविशेषे आशौचमध्येऽपि सापिण्ड्यस्य शास्त्रीयत्वेना शौचान्तकाल व्यभिचारितया त्वयाप्य-ङ्गीकरणीयत्वाच्चेति प्रव्यक्तमेवेति न बहूपपादन मर्ह-ति य दपि। "आनन्त्यात्कुलधर्माणामित्याद्याकारिका व्याघ्रस्मृतिरपि द्वादशाहमेव सपिण्डनकालं व्यवस्था-पयति"। इति इदमपि सन्दर्भानभिज्ञतानिबन्धनम-भिधानं तथाहि श्राद्धषोडशकानन्तरमेव सापिण्ड्य-स्यानुष्ठेयत्वेन तस्य चापकर्षमन्तरेण सहानुष्ठानुपप-त्तितया श्राद्धषोडशकापकर्षस्य च सतिसामर्थ्ये प्रति-

षिद्धतयाऽसमर्थमुद्दिश्यैव व्याघ्रेण "आनन्त्यात्कुलधर्म्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थिते च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते" इत्युक्तम्, अतएवनिर्णयामृते सपिण्डीकरणे आब्दिक कालस्य मुख्यतामभिधाय, तच देश कालादि स्वशक्त्यभाव भिया द्वादशाह एव कार्यं तदाह व्याघ्रः ॥ आनन्त्यात्कुलधर्म्माणामित्याद्युक्तम् - असमर्थविषयत्वं चास्य स्पष्टमेवाक्षरतोपि लभ्यते इति न वहु प्रयस्यते तदुपपादने । अतएव वाचस्पतिस्तरङ्गिण्याम् 'अत्रसंवत्सरान्त एव मुख्यः कालः । अशक्तौवृद्धौ वापकर्षः । इति श्राद्धषोडशकापकर्षनिषेधश्च यथा हेमाद्रौ अपकृष्येत्यनुवृत्ता वाहौशनाः "वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् । सश्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह पच्यते" इति तदेव मवस्थितौ वृद्ध्युपस्थिति विहीनस्याग्निकस्य विप्रस्यैव द्वादशाहे सापिण्ड्यानुष्ठान ममुख्यमिति क्व व्याघ्र स्मृतिविभीषिका प्रतारणया क्षत्रियादीनां प्रकृतिस्थानां वृद्धावनुपस्थितायां द्वादशाहे सापिण्ड्यं क्व च तदन्यथानुपपत्त्या तेषां दशाहाशौचमुख्यत्व ख्यापन मिति विवेकिन एव विवेचयन्तु । यदपि "अत्रद्वादशाह पद-

माशौचान्तोपलक्षणमिति केनचिदुक्तं तु नयुक्तं विचा-
रासहत्वात् इति तदप्यस्थाने वैदुष्यनिदर्शनमिति न
स्थाने ॥ तथाहि किं तावदाशौचान्तपदेनविवक्ष्यते,इ
त्येवमाशङ्क्य यद्‌ "आजन्म समर्ज्जितविद्यापरिपाकज परि
ष्कारप्रकारसन्दर्शनम्" स्वध्वंसाधिकरणत्व स्वध्वंसा-
धिकरणदिवसध्वंसानधिकरणत्वैतदुभयसम्बन्धेनाशौ-
च विशिष्टः कालोवा,आशौचध्वंसाधिकरणकालो वा"
इत्यादि तदनुक्तोपालम्भमात्रं वादिनाशौचान्तपदे-
न आशौचध्वंसाधिकरणप्रान्तोदितसापिण्ड्याधिकर-
णाब्दादितत्कालस्यैव वक्तव्यत्वेनाऽशङ्कायाअनवस-
रहतत्वात् । किञ्च । सर्वेषामेव वर्णा ना माशौचान्ते
सपिण्डनमिति त्वदुद्धृत कातीयवचनस्था शौचान्तपदेन
भवतापि किञ्चिदुक्तव्यमेवेति किमपराद्धं व्याघ्रस्मृतिस्थ
द्वादशाहपद माशौचान्तोपलक्षकमिति वदता परेण
नचैत्पाणिपिधान माशौचान्तपदार्थं पर एव परि-
ष्कुर्वीत न भवान् नापि वा त्वदीय पक्ष एवास्य परि-
ष्कार आत्मानं लभेत नापरस्य, प्रत्युत तथार्थकरणे
कातीयवाक्यैकवाक्यतैव समपादीति कस्तेऽ भिप्रे
वादिनीति स्वयमेव विचिन्तय । यदपि कालादर्शध्र-

तद्वचनविन्यसनं यच्चानन्तरैकादशेऽहनि सपिण्डीकरणस्य निषिद्धत्वाभिधानं यच्च तन्निबन्धनं लशुनभक्षण न्यायसन्दर्शनं तत्सर्वं मनुक्तोपालम्भमात्रं गगन निष्ठीवनमितिनेह किमपि प्रतिवक्तव्यम् ॥ यदपि
“नच व्याघ्रोक्तिः साग्निकमात्रपरेति वक्तुं शक्यं तथासति ब्राह्मणमात्र परत्वेनैव सामञ्जस्ये तत्कृतोपलक्षणत्व पर्यन्तानुधावनस्य वैयर्थ्यापत्तेः”

इति, तदप्यपर्याप्तं तथाहि अत्र व्याघ्रोक्तेः साग्निक मात्रपरत्वापेक्षया ब्राह्मणमात्रपरत्वे सामञ्जस्यं लाघवरूपं स्मृतिस्थ द्वादशाहपदस्या शौचान्तकालानुपलक्षकत्वनिबन्धनं वक्तव्यं, तच्च न सम्भवति । ब्राह्मणमात्रपरत्वे स्मृतिस्थद्वादशाह पदस्य जघन्य वृत्त्यनङ्गीकारेपि सामान्यपरस्य स्मृतिवाक्यस्य ब्राह्मण परत्वकल्पने एव महागौरवेण तथा वक्तुमशक्यत्वात् । नच तथापि सामान्यपरस्य वाक्यस्याग्निमन्मात्रपरत्वकल्पने गौरवं समानमेवेति शङ्क्यम् । तस्य वचनान्तरसिद्धत्वेन तत्कल्पनाप्रयुक्तगौरवस्या ऽवश्यं सोढव्यत्वादिति शम् । यदपि
“नहि द्वितीयः तस्याशौचोत्तरसर्वकालात्मकतया आन-

न्त्यात्कुलधर्माणामित्यादि पादत्रयसूचितस्य त्रिपक्षा-दिकल्पापेक्षयापि कालसङ्कोच तात्पर्यस्य बाधापत्तेः"

इति, तदपि धर्मशास्त्रानवलोकन निबन्धनं तथा-हि नह्याशौचध्वंसाधिकरणकालमात्रस्य सापिण्ड्य निमित्तत्वम्। तथासति तत्तत्कालविधाना नर्थक्या-पत्तेः। किन्तु आशौचध्वंसाधिकरण तत्तत्कालस्यै-वेति नाशौचोत्तरसर्वकालात्मकता सापिण्ड्य काले, आनन्त्यात्कुलधर्माणामित्यादिना बोधितस्य त्रिपक्षा-दि पक्षापेक्षयापि कालसङ्कोचस्य त्व समर्थ विषयत्व मित्यर्वागेव प्रत्यपोपदमिति नेह विशेष आवश्यकः कश्चित्। यच्चाप्युपसंहारः

"तस्मान्मुख्यार्थमेव द्वादशाह पद मिति सिद्धम्" इति, सोपि परम पाण्डित्यनिबन्धनः पूर्वोक्त मुनि-वचन निचयेन युक्तिशतोप बृंहितेन प्रातिस्विकाशौ-चपक्ष व्यवस्थापनेन। व्याघ्रस्मृतेश्चा समर्थपरत्वव्यव-स्थापनेन द्वादशाहे सपिण्डीकरणान्यथानुपपत्त्य-भावेन च त्वदुक्त युक्त्या भासानांविलयनात्। यच्च

"तच्चोक्त कात्यायन वचनानुसारेण सर्ववर्णानां दशा-हाशौचकल्प एव सङ्कत इतिसाधूनुगृह्यते इति

मनोराज्यं, तदपि विपश्चितां समाजे हासासादं, जातीयस्य शौचापकर्षबोधकताविरहेण तस्य त्वदुद्दिष्टार्थप्रमापकत्वाभावात् । केवलमाशौचान्तकाले सापिण्ड्यप्रमापकताया उभयोरेव वादिनोः स्थलविशेषेऽभिमतत्वात् । अत्रापि "दशाहाशौचकल्प एव सङ्गच्छते" इति वदता त्वया दशाहपक्षस्यैव मुख्यत्वख्यापनेनाग्रे दशाहप्रातिस्विकाशौचपक्षयो रुभयोर्हस्तावलम्बदानं कथं घटतामिति भवानेव विजानात्विति शम् । यत्तु

"अत एव देवलोपि "आशुच्यं दशरात्रं तु सर्वेषामपरे विदुः । निधने प्रसवे चैव पश्यन्तः कर्मणां चयम् इत्यनेन हेतूपन्यासपुरःसरं कल्पान्तरबाधाभिप्रायगर्भं दशाहाशौचमेव सर्वसाधारण्येन विदधातिस्म इति, तदपि हारलतामदनरत्ननिर्णयामृतापरार्कप्रभृतिगौडग्रन्थविप्रतीपं युक्तिपथातीतं चेति सविस्तरमग्रे निरूपणीयं न्यरूपयं च पूर्वमिति तत एवावगन्तव्यम् ॥ यत्तु,

"वृहस्पतिरपि 'दशाहेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुध्यन्ति गो

त्रजाः । इत्यनेन जातिविशेष मनुपन्यस्य दशाहाशौ-
चं बोधयति स्म" इत्यभिधानं, तत्तु ते उच्छृङ्खलतामेवाव-
गमयति । तथाहि रुद्रधरग्रन्थविन्यस्तसमस्तस्वधर्मभा-
रस्य ते कथं तदुल्लङ्घनम् । रुद्रधरेण हि मनूक्ता माशौच म
भिधाय 'शौचाशौचे प्रकुर्वीरन् शूद्रवद्वर्णसङ्कराः' इत्यु-
पन्यस्य, अपकृष्टवर्णेनोत्कृष्ट वर्णस्त्रीषु जाताः सङ्कराः
प्रतिलोमपदवाच्याः अनुलोमानां तु स्वमातृजात्यु-
क्त माशौचं तत्रापि विशेष माह बृहस्पतिः 'दशा-
हेन सपिण्डास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके । त्रिरात्रेण
सकुल्यास्तु स्नात्वा शुध्यन्ति गोत्रजाः" इत्येवमुपदर्श्य,
अत्र दशाहपदं स्वस्वजात्युक्ताशौचोपलक्षकम्" । इ-
त्युक्तं, तत्कथमेतस्य त्वदीय सर्ववर्णाशौचसाङ्कर्य साध-
कत्वमिति मिथ्या ते प्रलपितम् । किञ्च । कदाचि
त्त्वं दाक्षिणात्य ग्रन्थानुयाने स्वस्य स्वानुगानां च
प्रायश्चित्तस्या नुस्मरसि उत्तेजयसि च गौडग्रन्था-
नुयानं कदाचित्तु प्रलाप मार्ग म लभमानः सर्वानपि
गौडदाक्षिणात्य सन्दर्भकृतः शिष्टानवधीर्य मनसैव कि
ञ्चिदाख्यासि, उपरतां तु निरङ्कुशार्हत्य वचसः सं-
सारे त्वामेक मति म तिम पहाय केनापि शिष्टेन सर्व

वर्णाशौच सङ्करसन्देशकत्वं शिष्ट मत तु मेव प्रयतसे-
नया स्यात मित्यल मति क्षोदीयसि विषये वक्तु भाय-
सेन ॥ यस्तु

“नच पुरोडाशं चतुर्द्धा करोतीत्यस्या मन्वयेऽप्युपसं-
हारवदे तस्यापि शुध्येद्विप्रो दशाहेन इति म न्या-
ह्युक्त विशेष एवोपसंहार इति साम्प्रतम्” इति

तदिदं स्वव्यवस्थास्तु मीमांसा परिशुद्धिप्रदर्शनं स्वस्य
मीमांसा मांसलत्व निदर्शनं च हासास्पदं मीमांसक-
गोष्ठीषु । तथाहि स्थलान्तरे बाधकत्वेना भिमतशास्त्र
यौर्वयर्थान्यथानुपपत्ति निबन्धन बाधकताङ्गीकारेपिप्र-
कृते न तथा बाध्यबाधकभाव स्तथासति पूर्वोक्तानां म-
न्वत्रिसंवर्तोशनोङ्गिरोवाक्यानामाशौचे समानार्थाभि-
धायिना मन्यतम वैयर्थ्येनापि बाध्य बाधकभावप्रकल्प-
नापत्तेः किन्तु बार्हस्पत्ये जातिविशेष मनुपन्यस्याभि-
हितस्य दशाहाशौचस्य सर्वशाखाप्रत्ययन्यायेन स्मृ-
त्यधिकरणन्यायेन च मनूक्तविशेष एव पर्यवसायिता-
याः कल्पनीयत्वेन सामान्यस्य बार्हस्पत्यस्य विशेषे व-
र्णानां प्रातिस्विकाशौचे मानवे पर्यवसायितया न स-
र्ववर्णानां दशाहाशौच बोधकत्वमितरथा तु स्मृत्यधिक-

रणान्यायोपि ते ऽत्यन्तविप्रकृत इति महदनिष्ट मापद्ये-त। अत एव तु बार्हस्पत्य वचनस्य दशाहपदं स्वजात्यु-क्ताशौचोपलक्षकमिति सर्व्वानिबन्धकृतः। यदप्यत्र सा-भिमानं।

“प्रकृते देशभेदादिना व्यवस्थाया वक्ष्यमाणतया” इ-त्यादि, तत्सर्वं धर्मशास्त्रविरुद्धं यावन्मान्यनिबन्धविरुद्धं च तथाहि। “विप्रः पञ्चदशैव तु” मासेनैव तु शुद्धिः स्यात्,, “क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पक्षेण शुध्यति। मासेन तु तथा शूद्रः शुद्धि माप्नोति नान्तरा” इत्या-द्यार्षवाक्यैः सावधारणं जात्युक्ताशौचानुष्ठान विधाने-न गुणनिबन्धनाशौचसङ्कोचस्यापि च तत्तत्कर्मानुष्ठा-नमात्र प्रयोजकीभूताशौचनिवृत्ति परतया सर्वाशौच-निवृत्तेस्तु मनूक्तकालावधिनैव सर्वैर्हारलता रत्नाक-र मदनरत्न मदनपारिजात शुद्धितत्त्वशुद्धिविवेकादिकृ-द्भिरभिहिततया देशभेदादिनाशौचह्रासस्य परिशीलि-तधर्मशास्त्रेण पुंसा सर्वथापि दुर्वचत्वात्। यच्च क्वाप्यभि-हितः शौचसङ्कोचो देशविशेषनिबन्धनो न जात्युक्ता-शौचसङ्कोचविषयक स्तस्य शिष्टैः कलौ सर्वथाप्यसं-कोच्यत्वात् यथोक्तं शुद्धितत्त्वे हेमाद्रिपराशरभाष्यधृ-

तादित्यपुराणम् 'कन्यानाम सवर्णानां विवाहश्च द्विजातिभिः। दत्तस्वाध्यायसापेक्ष मघसङ्कोचनं तथा। दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणाम्। भोज्यान्नता गृहस्थस्य तीर्थसेवापि दूरतः। ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पक्वतादि क्रियापि च भृग्वग्नि मरणं चैव वृद्धादि मरणं तथा। एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः। निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः। इति। किन्तुबाल विदेशगत मृतपुरुषादिविषये अतिक्रान्ताशौचादिस्थले च विभिन्नार्थबोधक वचसोः सर्वथा समबलत्वे देशभेदादिना ऽशौचशास्त्रयोर्व्यवस्थापन मित्यग्रे व्यक्तीभविष्यति। किञ्च। देशविशेषोपलब्धाचारे विचिकित्सासत्त्व एव तु शास्त्रार्थ पर्यालोचनारम्भ इति सन्दिग्धप्रामाण्यक आचारः स्वात्मपरित्राणासमर्थो न वचनकलङ्कक्षालननिवर्तक स्तस्य परमुखनिरीक्षकत्वात्। यथाचस्मृति राचारतः प्रबला तथा ऽर्वाचीनैरावबुधम्। इतिशम्॥ यदपि "यत्तु, आङ्गिरसवाक्यं देवलवाक्यं गुणवच्चातुर्वर्ण्यविषयकम् गार्भं तु महानिबन्धेष्वनुद्धृतत्वेनाऽप्रमाणमेवेति कैश्चिदुत्प्रेक्षितम् तन्नोच्यते चातुर्वर्ण्यविष-

यच्च वाक्यस्य गुणवत्त्वानुवर्ण्यविषयकत्वं क्षत्रियादीनां सर्वेषां गुणवत्त्वेनाशौचसङ्कोचः अतो ब्राह्मणेन किमप-राद्धं यत्तदाशौचं न सङ्कोचयति, येषु सङ्कोचितं तेष्वपि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राणां दशाह द्वादशाह पञ्चद-शाह मासाशौचकालान् विदधतां महर्षीणां जात्यु-त्कर्षाशौचापकर्षे तात्पर्यस्य स्पष्ट मवगतेर्गुणवत्त्वस-मानाधिकरणोत्कृष्ट जातिमत्त्वेऽपि तथैव प्रकर्षक्रम-स्य न्याय्यत्वे तद्वैपरीत्येन शूद्रस्य गुणवत्त्वे विं-शतिर्दिनानि न्यूनिनानि, वैश्यस्य पञ्चैव, क्षत्रिय-स्य ततोपि न्यूनं दिनद्वयमेवाल्पितं सर्वापेक्षया न्यू-नाशौचार्हस्य ब्राह्मणस्य पूर्णमेवाशौचं कस्मादुक्त-मितस्य किं वक्तव्यम् ”

इत्येतदन्त म यदनुक्तं केनापि परेण निबन्धकृतो-क्तमिति तथास्माकं निराकरणसन्नाहो नावश्यकः । तथापि । “यद्यपि का नो हानिः परकीया स्वरति” इति न्यायेन परकीय मप्यनुचितं निराकरणं सतां चे-तोनुदमिति कथं सद्धर्माङ्ग स्वमत्सरपरीक्षया प्रति-ज्ञान निर्वाहाय च पुनरत्रापि प्रवृत्तिःसाधीयस्येव । तथा हि । तत्र चातुर्वर्ण्यसाधारणा शौचबोधकत्वेनाभिमतयो

राङ्गिरस देवलवाक्ययो र्यत्परैर्गुणवच्चातुर्वर्ण्यविषयक-
त्व माख्यातं तत्र को नाम दोषः, अस्त्वेवतत्र तत्र स-
ङ्कोचनिबन्धेषु तयोस्तादृशोऽर्थः। यदिचोच्यते तत्त्याशौच
सङ्कोचस्य वर्णत्रय विषयकत्वेपि न ब्राह्मणविषयकत्व-
मिति चातुर्वर्ण्य विषयकत्वं न वक्तुं युक्तमिति, तदा प्र-
कृते बाधादेव नावच्छेदकावच्छेदेन विधेयान्वयोऽभि-
मत इति ब्राह्मणाशौचसङ्कोचासत्त्वेपि तथाभिधानं
युक्तम्, स्पर्शवति वायौ रूपासत्त्वेपि "स्पर्शवन्ति द्र-
व्याणि रूपवन्ति" इति वाक्यवत्, नहि तथाभिदधा-
नः सामानाधिकरण्येनान्वयं बुबोधयिषुः कश्चिदप-
राध्यति। वस्तुतस्तु निरुक्ताङ्गिरस देवलयोः पाराश-
र वाक्यैक वाक्यतापन्नतयाऽर्थस्याभिमतत्वेन पाराश-
रस्य च गुणवद्ब्राह्मणाशौचसङ्कोचकत्वेन गुणवच्चातु-
र्वर्ण्य विषयकत्व मञ्जसैव सुघटमिति द्रष्टव्यम् यदि च
निरुक्त वाक्ययोर्यदि गुणवत्त्वनिबन्धन आशौचसङ्कोच
स्तदा गुणवत्तमस्य ब्राह्मणस्याप्याशौचसङ्कोच आव-
श्यक इति पादप्रसारिका तदा अङ्ग! प्रमाणपरवता-
मस्माकं प्रमाणविरहादेव तदाशौचसङ्कोचनं त्वया-
दिषु विष्वेव विश्राम्यतीत्यनीशाः शास्त्रेषु वयं त्वया

द्याशौचसङ्कोचे" क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिः । तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवाप्नुयात्" इत्यादि तत्र तत्र महानिबन्धोपनिबद्धः प्रमाणसमुदायोऽस्त्येवेति न तं पुनः पुनरामनामः । वस्तुतस्तु ब्राह्मणानामप्यस्त्येवा शौचसङ्कोचो गुण गौरवनिबन्धनः परं "वृत्तस्वाध्यायसापेक्ष मघसङ्कोचनं कलौ" इति कलिवर्ज्येषु हारीतेन च "दशाह एव विप्रस्य सपिण्डमरणे सति । कल्पान्तराणि कुर्वाणः कलौ भवति किल्बिषी" इति निषेधनान्नाचारः सङ्कोचस्येति तु सारम् ॥ किञ्च । त्वमपि नामेरिका महारण्यनिवास्तव्यो नाप्यवैदिकमतानुगः किन्त्वपुनर्भव भव पुरीनिवास्तव्यो मान्य वैदिक मतानुग इति भवतैवास्य समाधि रुच्यतां गुणवत्त्व समानाधिकरणोत्कृष्टजातिमत्त्वनिबन्धनोप्याशौचसङ्कोचः कस्य हेतोः शूद्र एवाधिकृतमः " सर्वेषामेव वर्णानाम्" इत्याङ्गिरसे तस्य त्वद्विवादग्रस्तत्वेपि " त्रिंशद्दिनानि शूद्रस्य तदर्द्धं न्यायवर्तिनः" इति याज्ञवल्कीये "क्षत्रियस्तु दशाहेन स्वकर्मनिरतः शुचिः । तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवाप्नुयात्" इति पाराशरीये चाभिहितस्य गुणगरिमनिब-

ध्ययनाशौचसङ्कोचश्च वैदिकैः सर्वैरेव सबहुमानमङ्गीकरणीयतया तत्र ते वाचनिकत्वमपहाय का नाम वाचो युक्तिः प्रसरेत् । तत्र तु मते प्रकृतवचनयोरपि सर्वापेक्षया क्षत्रियस्याधिकः आशौचसङ्कोचोऽपेक्षितस्ततो न्यूनो गुणवत्तमस्य वैश्यस्य न्यूनतमश्च सर्वतोपकृष्टतमस्य शूद्रस्येति वक्तव्यं स्यात् । तदत्र स्माध्यापकीयतर्केषु नैज नैपुण्य प्रदर्शनापेक्षया मौनावलम्बनं तस्यत्वादृशां सर्वार्थसाधकत्वात्, इतरथा तु "न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति" इत्येतद्वचनं श्रुत्वा-यदि शूद्रस्यैवं पातकविरह स्तदा सर्वश्रेष्ठाना मस्माकं ब्राह्मणानां तु क्वापि पातकशङ्का नास्तीति ते सरला समुत्पद्येत मनीषेति वितीर्णा धर्मकर्मणे सतिलोञ्जलिस्त्वयेति कष्टं सताम् । यदपि

जात्युत्कर्षेण शौचापकर्षं ऋषीणां तात्पर्यावगमाद्गुणवत्त्व समानाधिकरण जात्युत्कर्षेपि क्रमिकाशौचह्रासस्य न्याय्यत्वेन तद्विपरीतः कथमयं शूद्रस्य मासे दशैव वैश्यस्य तु पञ्चदशके दशैव क्षत्रियस्य तु द्वादशके दशैव, ब्राह्मणस्य तु न कश्चिदपि ह्रासः"

इतितात्पर्यकं विकल्पाक्षरैस्तर्कणं तत्तु त्वदीयं

हेतुकत्व मेवा व धारयतीति समाधौ वक्तुं न प्रयतनीय-
मस्माभिः। इतरथा तु ब्राह्मणादयस्त्रयो वर्णा वेदच-
तुष्टयोमीयते ऽध्येतुं, शूद्रस्तु नैक मपीत्यत्र किमुत्तर-
णीयं त्वदुक्त रीतया तु पुनरेव क्रमशः सर्वज्येष्ठो ब्रा-
ह्मणो वेदचतुष्टयीं क्षत्रियस्त्रयीं वैश्यो द्वयीं शूद्र स्त्वेकं
वेदमिति प्राप्नौ साधु क्रमसंरक्षण मिति हासास्पदतां
न हास्यसि ब्रुवन्नेव मास्तिक समाजेष्विति तूष्णीमे-
वास्स्वेत्यु पदिशामः॥ यदप्यत्रैव प्रकरणे "गारुडं तु
महानिबन्धे ष्वनुद्धृतत्वेनाऽप्रमाणमेव" इति तदपि
न्यूनम्। नहि वादिनो महानिबन्धानुद्धृतत्व मात्रेणाऽ
प्रामाण्य मापादयन्ति तथा सति परमप्रामाणिक श्री-
रामायण महाभारतेतिहासस्य परः सहस्रश्लोकानां
निबन्धेष्वनुद्धरणा त्तेषा मप्यप्रामाण्यापत्तेः। किन्तु
गारुड विश्वसनीयपुस्तकेषु पाठविरहान्मूलक्षतिं ब्रूमहे।
वचनानां हि द्वेधा प्रामाण्यम्। आकरग्रन्थस्थत्वेन,
प्रामाणिक निबन्धेषूद्धृतत्वेन च। यथेदानींतनेषु स्मृ-
तिपुस्तकेष्व नुपलम्भदोषदूषितानामपि स्मृतिवाक्या-
नां महानिबन्धोद्धृतानां प्रामाण्य मङ्गीक्रियते। आ-
करे ऽनुपलम्भस्तु प्रामादिकएव कल्प्यते। कदाचि

द्वामहानिबन्धानुद्धृतानामपि पुनराकरग्रन्थस्थानां प्रा-
माण्यं निरपवाद सिद्ध तु गारुडे तदुभय मपि नास्ति
आकरे ऽनुपलम्भात् निबन्धेष्वनुद्धरणाच्च। तस्माद्
गारुडस्य महानिबन्धानुद्धृतत्वमात्र निबन्धनं ना
प्रामाण्यं किन्तु पूर्वोक्तरीत्येति "गारुडं तु महा-
निबन्धानुद्धृतत्वेना प्रमाणमेव" इतिकस्यचिदभिधानं
वादितात्पर्यानवबोधनिबन्धन मेवेति शम्॥ यदपि
"गुणवतो ब्राह्मणस्य हि पराशरेण तस्य मा-
शौचमुक्तम् 'एकाहाच्छुध्यते विप्रो योऽग्निवेदसमन्वि-
तः। त्र्यहात्केवलवेदस्तु' इत्यादिना, इत एवास्ये-
निर्णयसिन्धौ देशाचाराद्व्यवस्थेत्येवान्ततः सिद्धा-
न्तित मिति चक्षुरुद्घाट्य दृश्यताम् अतएव शुद्धिस-
यूखे आङ्गिरस वचनान्त मुपन्यस्य, एषां च देशाचारा-
द्व्यवस्थेत्यें वोक्तम्" इति, तदपि ग्रन्थार्थानभिज्ञतानि-
बन्धनमेव, यतो निर्णयसिन्धौ देशाचारभेदेन यद्व्य
वस्थापन मुक्तं न तज्जात्युक्ताशौचाभिप्रायेण किन्तु त-
त्राव्यवहितपूर्वं दक्षस्य "सद्यः शौचं तथैकाह स्त्र्य
हश्च तुरहस्तथेति वचन मुपन्यस्य 'चतुर्थे दशरात्रं स्या-
त् षण्निशाः पुंसि पञ्चमे' इत्यादिकं चोपन्यस्य दे-

शाचारभेदाद्वा नेयानि इत्यभिहितमिति तद्विषयि-ण्येव देशाचारतो व्यवस्थेतिबुद्धिमन्तः परीक्षन्ता मेव मेव तु एवं विधविषयेषु देशाचारतो निर्णयं वदन् स्मार्तभट्टाचार्य्योऽपि भवताऽनुगृहीतः स्यादित्यग्रे प्रप-ञ्चयिष्यति । यदपि कस्यचिदाधुनिकस्य दाक्षिणात्य सम्प्रदायस्यस्य मयूखकृतो व्यवस्थाऽनुगमनं तदपि शो-चनीयम् एवं सत्येकैकस्यादुरवस्थितस्य परै राधुनि-कैर्व्यवस्थापितस्यविषयस्यपरिग्रहे विधवानांविवाहो-पि केनचिदाधुनिकेन दुर्व्यवस्थापितःप्रामाणिकः स्या-त्,स्याच्च यार्कन्दसमरकन्दादि देशस्याधुनिकम्लेच्छस-म्प्रदायानुयायिना मपि भूतपूर्व सुप्रसिद्धक्षत्रिया णामु पनेयता त्वदुदितो मातुलकन्यकायाः परिणेयत्वप्रस-ङ्गोपि चेति त्वमेव मीमांसस्वेति शम् ॥ यदपि

"नाप्यापद्विषयकत्वेनाप्येतद्वचनं योजयितुं शक्यम् आपन्नो ब्राह्मणोऽघं न सङ्कोचयेत् क्षत्रियादिस्तु स-ङ्कोचयेदित्यत्र हेत्वनुपपत्तेः नह्युपपन्नार्थपरत्वसम्भवे-ऽनुपपन्नार्थपरता वाक्यस्योचिता" इति, तदपि शास्त्री-यविश्वास वासनाराहित्यमेवाऽवधारयति। इतरथा तु समसंस्थानयो र्ब्राह्मणशूद्रयो रादिसृष्टतस्तोऽपरस्त्वेका-

मेव भार्यामुद्वोढुमर्हं इतरथ्याशङ्कनीयंस्यात् । अनाप-
न्नोपि शूद्रो मद्यस्य घटी चतुष्टयं रिक्तयेदपि न पापभाक्
ब्राह्मणस्त्वापन्नोपि मद्यं स्पृशन्नपि पतेदेवेतरापि निरु-
त्तरता मापद्येतेति विजयेरन् लौकायतिक पथ पथिका
इति तेपि लज्जाकरं तस्माच्छास्त्रेषु यद्यथाभिहितं
तत्तथैवानुपालनीयं तर्कोपि च शास्त्रानुकूलो योज-
नीयो ऽन्यथातु वर्णव्यवस्थायाः पुनर्दुरवस्थैव स्यादिति
स्वहस्तेन स्वपादच्छेदो नोचितस्ते, आपाद्याशौचसङ्को-
चस्तु दक्षेणानुमन्यते "स्वस्थकाले त्विदं सर्वमाशौचं प-
रिकीर्तितम् । आपद्गतस्य तु पुनः सूतकेपि न सूतकम्"
इत्यापच्चेहप्रकृतकर्मानुष्ठानौपयिकस्वास्थ्यव्यापादि-
कावस्थैव न तु कलिकालमात्रस्वरूपा कलावपि स्वर्गाप-
भोग्यफलावशेषानुभव सज्जिमपरिगृहीतमहनीयवि-
ग्रहाणां प्राणभृद्भेदानामवतीर्णत्वात् । किञ्च । त्वदी-
ये कलिरूपापन्निमित्तकाशौचसङ्कोचपक्षेपि कस्य
हेतोः शूद्रादीना मेवाशौचसङ्कोचो नब्राह्मणस्ये त्यत्र
किमुत्तरणीयं स्यादापदः कलिरूपायाः साम्यादिति ।
तस्माद् "आपन्नो ब्राह्मणोऽघं न सङ्कोचयेत् क्षत्रियादि-
स्तु सङ्कोचयेदित्यत्र हेत्वनुपपत्तेः" इतित्वदीयाभिधानं

तदैवापद्रूपमिति तदपसारणं पुनरावश्यकं तदैवेति समदृश्या विलोक्य । किंच सर्वदैव सन्निहितापदास्तया ऽपदुक्तामशौचमेवाऽनुष्ठेयं न तु मुख्यमितराद्यापत्तिप्र-तक्तं च वारणीयं स्यादिति शम् ॥

वस्तुतस्तु स्वस्वजात्युक्ताशौचानुष्ठाने नास्त्येव कश्चन व्याघातः आसेतुहिमाचलमाचरन्त्येव सन्तस्तथा, विहाय कांश्चिद्दुरुपदेशदग्धान् विदग्धानिति, को नाम स्वस्वजात्युक्ताशौचानुष्ठाने कलेरापद्रूपतारूपः कलङ्कः ॥ यदपि-

"किन्त्वापद्विषयकत्वेऽपि विशेषेणापत्स्वरूप गवेषणायाम् "आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य" इति व्यासोक्त्या अनियतजीवनेनाऽनन्तकुलधर्मकर्तव्यताप्रसङ्गरूपायाः सपिण्डनापनोद्यप्रेतत्वावस्थितिरूपकुलधर्मानुष्ठानप्रतिबन्धकस्वल्पायुष्कमनुष्यबहुले कलौ क्षेमेण निवृत्तिः कार्येत्यत्र हेतुत्वेन प्रदर्शितायाः आपद एव समानविषयकशास्त्रबोधितत्वाद्ग्रहीतुमौचित्येन साम्प्रतमाङ्गिरसवाक्यस्यैवानुष्ठापकत्वं लब्धमित्यतिशयेन पोषितोऽस्मत्सिद्धान्तः"

इत्युक्तं तु पण्डितपुङ्गवस्य विडम्बनामात्रं तथाहि "साम्प्रत माङ्गिरसवाक्यपोषितो ऽस्मत्सिद्धान्तः" अत्र साम्प्रत मित्य स्य कलावित्यर्थस्तथा च कलौ सर्व वर्ण साधारणाशौच बोधकाङ्गिरस वाक्यस्यैवा शौचानुष्ठापकत्वमित्य वधारेण वर्णानां प्रातिस्विकाशौचपक्षा मन्वाद्युक्ता व्युदस्यन्ते । किञ्च पूर्वमपि द्वादशाहोनसपिण्डीकृत्यन्यथानुपपत्त्या शूद्रान्तानां दशाह एव मुख्यः सर्वसाधारणाशौचकालो व्यवस्थापित इति प्रातिस्विकाशौच माचरतां प्रत्यवाय एव स्यात्कलौ, दृथावर्षसंवर्द्धनस्य शास्त्रेषु निषिद्धत्वात् यथा च गुरुलघूपायसाध्ययोः कर्मणोर्न विकल्पादि परिकल्पना तथा पूर्वमेव निरास्थ मिति तथाभिधानं नात्मपरित्राणाया ऽलमृ नापि देशाचारकुलाचारयोरपि दशाहप्रातिस्विकाशौचपक्षयो र्मुख्यत्वसंपादनाय पर्याप्तिः शङ्क्ये न प्रातिस्विकाशौचपक्षान भिधाय "स्वस्थकाले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्तितम् । आपद्गतस्य तु पुनः सूतकेपि न सूतकम्" इत्यापद्येवा शौचसंकोचस्याभिहितत्वेन त्दृष्यमन्त्रैरपि च प्रातिस्विकाशौच माख्याय "शुद्धिर्भवति नान्तरा" इत्यनेनानापद्यान्तरालिकाशौच-

पक्षाणाम वैधत्व व्यवस्थापनान्ततश्चागत्या दर्शाद्यपक्ष-त्वविधयादीनां गौणवृत्त्यैव वक्तव्यम्। एवं च मुख्यपक्ष-मुद्दस्य गौणं पक्षं कल्पयतः कर्मानुष्ठानस्य "प्रभुः प्रथमकल्पस्य योनुकल्पे प्रवर्तते। नसाम्पारयिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्" इति स्मृत्यानैष्फल्याम्नानान्न किञ्चिदिदमिति स्मृतितत्त्वविदां परामर्शः॥ यदपि

"एष एव चार्थो गारुडवाक्येषु विस्तरेण निरूपितः। अतएव च तद्वाक्यानां महानिबन्धेष्वनुद्धृतत्वेनाप्रामाण्य शङ्काप्यपास्ता उपनिबद्धवाक्यसमानार्थाना मुपनिबद्धप्रायत्वात्।" इति, तदप्यसङ्गतं स्वबोधः। आनन्त्यादिति व्याघ्रस्मृतेरशक्तपरतया महानिबन्धकारैर्व्याख्यातत्वेन सांवत्सरिककालस्यैव सपिण्डीकरणे मुख्यत्वख्यापनेन च व्याघ्रोक्तविप्रतीपार्थाभिधायिनां त्वन्मात्राङ्गीकृतानां शिष्टैर्निबन्धकारैरनङ्गीकृतानां प्रत्युत रघुनन्दनादिनिबन्धोद्धृत गारुडवाक्यविरुद्धार्थाभिधायिनां गारुडपुस्तकेष्वनुपलब्धानां क्रियासमभिहारेण निराकृतप्रामाण्यानां मुपनिबद्धवाक्यसमानार्थकतयोपनिबद्धप्रायत्वोक्तेरयुक्तेः। यच्च

"किञ्च भवन्तु तद्वाक्यानि निर्णयसिन्ध्वादि निब

ध्येष्वनुद्धृतानि तथापि धृतेषु 'सर्वेषामेव वर्णानाम्' इत्यादिवाक्येषु नानाविधतात्पर्यसन्देहे किन्तात्पर्यकत्वमित्याशङ्कायामाधुनिकनिर्णयः प्रमाणं स्यात्पुराणज्ञतोऽनेकदेशेषु प्रयोजितव्यवहारको निर्णयोऽप्रमाणं स्यादितिकथं सहनीयं यस्य भगवतः कृष्णद्वैपायनस्य वाक्यस्वतः प्रमाणेष्वपि मूर्द्धाभिषिक्तं तद्वाक्यं सन्दिग्धतात्पर्यकस्मृतेः स्वानूदितांशे तात्पर्यमपि ग्राहयितुं न शक्नोतीति को मन्येताऽऽस्तिककोटिप्रविष्टः"

इति, तदस्थाने पादप्रसारणं तदीयस्य गारुडवाक्यजातस्य क्रियासमभिहारेण सर्वथैव रुचिमत्त्वव्यवस्थापनेन तस्य प्रामाणिकता मव्यवस्थाप्य पौनःपुन्येन तदुपष्टम्भदानस्य प्रामाणिकगोष्ठीगर्हितत्वात् । एतेन "यस्य भगवतः कृष्णद्वैपायनस्य वाक्यं स्वतः प्रमाणेष्वपि मूर्द्धाभिषिक्तं तद्वाक्यं सन्दिग्धतात्पर्यकस्मृतेः स्वानूदितांशे तात्पर्यमभिग्राहयितुं न शक्नोतीति कोमन्येतास्तिककोटिप्रविष्टः" इत्यभिधानं परास्तम् । मूलशैथिल्येन तादृशाऽभिधानस्यास्तिकंमन्यमनसामेवसमुचितत्वादिति शम् ॥ यदपि

"व्यवस्थापनान्तरे प्रामाणिकत्वाङ्गीकारेपि वेत्यादिना गारुडस्य पुन रापद्विषयकत्व मुक्तं तच्चिन्त्यं यत आयुर्ह्रासादिरूपा मापद मधिकृत्यैव प्रवृत्तं तद्वाक्यमिति तत्राप्यापदन्तरप्रवेशे कियतीष्वापत्सु निमङ्क्तुमिच्छन्ति ते"

इति केनचिदभिहितं तदपि वाङ्मात्रं यतो ऽत्रायुर्ह्रासादिरूपापदित्यादिपदेन चेत्प्रकृतकर्मानुष्ठानोपयिकस्वास्थ्यव्यापादकावस्थारूपापत्त्वं गृह्यते भवता तदा न कश्चिदपि विवादस्तस्य। मयापि "सूतकेपि न सूतकमिति" दक्षवचो ऽनुरोधेनाशौचह्रास हेतुताया अङ्गीकरणीयत्वात्। यदि च सा न सञ्जिघृक्षिता तदा तत्र तत्र सकृदुक्तदोषसंवलनसत्त्वान्न बहु प्रत्युच्यते तत एव तत्पक्षस्य निराकरणीयत्वात्। यदपि "मिताक्षराकारेणापि बहून्कल्पानाशौचविषये प्रदर्श्य एषां च व्यवहाराभावान्नातीवोपयुज्यते व्यवस्थेति वदता सति देशविशेषे व्यवहारोपलम्भे तदनुसारेण व्यवस्थापनीयमिति स्पष्ट मेव सूचितम्। व्यवस्थापितं च तथैवोपलब्ध व्यवहारैर्मयूखकारादिभिः।"

इति, तदत्यन्त मयुक्तम्। तथाहि। यद्ययं सर्वर्णानां

समाशौचपक्षस्तस्मिन्काले प्रचलितोऽभविष्यत्तदावश्यं तद्विषये किञ्चिदुक्तमप्यभविष्यदयं तु परमाधुनिकैः श्राद्धभोजने, प्रेतोद्देश्यक शय्यादि ग्रहे च कालभूमान मसहमानैः प्रवर्तित इति तद्व्यवस्थापनं कथं मिताक्षराकारप्रभृतीनां शिष्टानां सम्भावितं स्यात्। नहि तत्काले मिताक्षराकारनिवासदेशा दन्यत्रापि देशे गर्ह्यं स्यामुष्याचारस्य प्रवृत्तिरासीदत एव प्राचीनेषु रत्नाकर हारलताप्रभृतिमैथिलग्रन्थेषु माधवादिप्रणीतमहाराष्ट्रग्रन्थेषु, शूलपाण्यादिप्रणीत वाङ्ग निबन्धेषु अपरार्कमदनरत्न निर्णयामृतादिगौडग्रन्थेष्वय मधर्म्याचारः सर्वथाप्युपेक्षितः। यस्त्वास्मिन्गर्ह्याचारे मयूखाऽनुमत्युल्लेखः स तु सर्वमान्य स्वदेशीय निबन्ध विरोधादेकैकं स्वाचारं जहतः पराचारं च क्रोडी कुर्वतः केवलं स्वीयसर्वाचारहानफलक मातुलकन्यकोद्वाह्यत्वापादक एवेति किं बहुनाऽन्येति शम्॥ यत्तु कश्चिद्विरसम्भृतमा करगह मकुराठोपचय मसंवाद्यावेगं मात्सर्यमुद्वमन्निव लोकमन्धं प्रपश्यन्निव निजबुद्धिवैभवं प्रदर्शयन्निव "किञ्चात व्यवस्थापनान्तरलेखोपि किञ्चिद्विचारणीयोस्ति। तथाहि। व्यवस्थापनान्तरे यश्चाप्यपकर्ष

आशौचे सोप्यसौ गुणगरिम निबन्धनो नतु जातिमात्र-निबन्धनो नचापि सर्ववर्णसाधारण एक इत्युक्तम् अत्र पृच्छामः किमत्र "एकादशाहाद्राजन्यो वैश्योद्वादशभिस्तथा। शूद्रो विंशतिरात्रेण शुध्यते मृतसूतके" इत्यादि वाक्येन जातिभेदेन भिन्नाशौचबोधकेन सूचिते ऽशौचापकर्षे जातिमात्रनिबन्धनत्वं सर्ववर्णसाधारणैकत्वं च निषिध्यते आहोस्वित् सर्वेषामेव वर्णानामित्यादि साधारणाशौचबोधकवाक्यलब्धे न तावत्प्रथमे तन्निषेधो-युक्तः तदाऽशौचस्य प्रातिस्विक रूपत्वेन भवत्सिद्धान्त-कोटिप्रविष्टत्वेन तत्र जातिमात्रनिबन्धनत्व खण्डनस्याऽनुपयोगात्। साधारण्यस्याऽप्रसक्तेश्च।नापि द्वितीये तदाशौचे सर्ववर्णसाधारणत्वेन न सर्ववर्णसाधारण एक इत्युक्तेर्वदतोव्याघातात् । न च जातिमात्र निबन्धनत्व विशिष्टसर्ववर्णसाधारणैकत्वाभावोऽत्र विवक्षितःस चात्र नास्तीति वाच्यम् नञ्द्वयेन विशिष्टाभावस्य बोधयितुमशक्यत्वात्। एकपदोपादान मप्यत्र प्रश्नवाक्ये च व्यर्थम् अनेकत्वे साधारण्यस्यैव भङ्गेन तत एव तल्लाभात् यद्यपि ब्राह्मणादयः स्वस्वधर्मनिरता इत्यादौ तत्तज्जात्यवच्छिन्न बोधक मपि स्वपदं दृष्टम् अथापि शब्दशक्ति-

स्वभावात्तत्तद्व्यक्तिमात्रवृत्ति धर्ममात्रबोधकत्वेन। स्व ग्र-न्थेषु निबध्यमानस्य प्रातिस्विकपदस्य तत्तज्जातिसम-नियतधर्मबोधाभिप्रायेणोच्चारणं युक्तमयुक्तं वेत्यपि-सुधोभिरेव विभावनीयम् यदि च व्यक्तिभेदेनाशौचभे-दाभिप्रायेणेयमुक्तिःस्यात्तदा साधारणाशौचस्य प्रति-कोटित्वं न सिध्येत्। अलं वा परवाक्यत्वच्युद्घाटनेन” इत्युपन्यास्यत् तदिदं तस्य वाक्यमन्ति द्रढिमानं मानय-ति मतिमतां मनस्सु। तथाहि “क्षत्रियस्तु दशाहेन स्व-कर्मनिरतः शुचिः। तथैव द्वादशाहेन वैश्यः शुद्धिमवा-प्नुयात्” इत्येतद्वचोबोधितो योयमाशौचसङ्कोचः सोऽयं न क्षत्रियत्व वैश्यत्वादि जातिमात्र निबन्धनस्तस्य स्वजा-त्युक्त कर्मानुष्ठान पारायणय रूपगुणगरिमनिबन्ध-नत्वेन सर्वेषां क्षत्रियादीनां तदनधिकारित्वात्। नच स क्षत्रियवैश्यसाधारण एकः किन्तु क्षत्रियस्य दशाहरू-पः वैश्यस्य द्वादशाहरूपः सङ्कोच इति सुष्ठूक्तं “यश्चा-प्यपकर्ष आशौचे सोप्यसौ गुणगरिमनिबन्धनो नतु जातिमात्रनिबन्धनो नचापि सर्ववर्णसाधारण एकः इति। अत एवापरार्कः “क्षत्रियस्तु” इत्यादि वचन-मुपन्यस्य स्वाध्यायाग्निसम्पन्न क्षत्रिय विषयक मिदमि-

ति व्यवातिष्ठिपत्। यदि च शातातपीयः "एकाद-शाहाद्राजन्यो वैश्यो द्वादशभि स्तथा। शूद्रोविंशति-रात्रेण शुध्यते मृतसूतके" इति वचनबोधिताशौच-सङ्कोचो भियते तदापि तस्य स्मृत्यन्तर वाक्यैक वाक्य-तया न जातिमात्रेण राजन्ये एकादशाहाशौचबोध-कत्वं वैश्ये वा द्वादशाहाशौचव्यापकत्वं शूद्रे च विंश-तिरात्राशुचित्व व्यवस्थापकत्वं किन्तु गुणवतामेव तेषां ससङ्कोचोऽनुमन्यत इति सोपि न जातिमात्रनिबन्धनो नापि सर्ववर्णसाधारण इति न किञ्चिदपि क्षतम्। अत एव तु अपरार्के "एकादशाहाद्राजन्यो वैश्योद्वा-दशभिस्तथेति शातातपीयं विधार्य "अनग्निकवेदाध्यायि क्षत्रिय विषयक मिदमित्युक्तम्। अयमिहाभिसन्धि र-ग्निस्वाध्यायोभयसंपन्नस्तूटक्षत्रियस्य पाराशरीयो-दशाहकल्पोन्यतर रहितस्यैकादशाहाशौचं शातात-पीय मुभयशून्यस्य च द्वादशाहाशौचं मानवीयं, प्रजा-पीडकस्य गुणहीनस्य तु स्मृत्यन्तरोक्तः षोडशाहकल्प इत्यविकलं सकलम् यथा च गुण गरिम निबन्ध-नत्वमाशौचसङ्कोचे तथा हारलता मदनरत्नापरार्क विधानपारिजातशुद्धितत्त्वशुद्धिविवेकादि महानिबधेषु

सुस्फुट मिदापि च पूर्वंन्य रूपय मित्याम्रे डनभियोदा-
स्यते । यदिच "सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेतथा।
दशाहा च्छुद्धिरित्येषामिति शातातपोऽब्रवीत्" इति
वचोभि हिता शौचसङ्को च उच्यते तदापि स न वर्णत्व-
व्याप्य क्षत्रियत्व वैश्यत्वादि जातिमिवन्धनस्तस्य सामा-
न्यतोवर्णनिमित्तकत्वेन वर्णत्व व्याप्यधर्माऽनिमित्त-
कत्वात्, नचापि सर्ववर्णसाधारण एकः, तत्प्रयोजक-
स्य द्विजयोः क्षत्रिय वैश्ययो रग्निसंयोगस्य, शूद्रेचद्विज
शुश्रूषादेर्भिन्नस्यैवनिमित्तस्य शास्त्रसिद्धान्तसिद्धत्वादि-
तिप्रयोजकभेदभिन्नत्वं तथाशौचस ङ्कोचे, स्वरूपतोपि
च नैक्य माशौच संकोचे यतः क्षत्रियवैश्ययो र्गुणिनो-
राशौचसङ्कोचः केवलं तदीयजातिप्रतिनियत कति-
पयप्रजासंरक्षणादि कर्मविधानानुमति प्रयोजनकः
शूद्रस्य तु द्विजशुश्रूषामात्रप्रयोजनकइति । एतेन
वादि तात्पर्यानभिज्ञस्य "एकपदो पादानमप्यत्र प्रश्न
वाक्ये च व्यर्थम् अनेकत्वे साधारण्यस्यैव भङ्गेन ततएव
तल्लाभात्" इत्यभिधान माशामोदकायितम् । "सर्वे-
षामेव वर्णाना मिति वचन वोधितस्याशौचसङ्कोचस्य
सङ्कोचत्वेन साधारण्येपि निरुक्तरीत्यैक्यविरहेण एक

पदोपादानस्यावश्यकत्वात् । एकपदोपादाने चाशौचा-
पगमप्रयोज्यस्य स्वस्वजात्युक्त सापिण्ड्यानुष्ठाना प्र-
तिबध्ययावत्कर्माधिकारिताप्रयोजक सर्ववर्णसाधा-
रणैकस्य धर्मस्य लाभ इत्येकपदं सार्थकम् सापिण्ड्या-
नुष्ठानेत्यादिर्व्युत्पत्तिः स्वयमूह्या । एवं च सर्ववर्ण-
साधारणो नैको मुख्यः काल इति सैद्धान्तिकाभ्युगाः
अतथाभूत इति तु पूर्वपक्षिणः । नचैवं प्रत्येकव्यक्तिवि-
श्रान्ताशौचस्योपसंग्रहे साधारणाशौचे प्रतिकोटि-
त्वं नसिध्यतीत्यतिफल्गु शङ्कनीयम् । अधुनैव दत्तोत्त-
रत्वात् । वस्तुतस्तु साधारणपदस्यैकत्वविशिष्टानेक
वृत्तिधर्मं प्रवृत्तिनिमित्तकत्वेन विशिष्टवाचकतया वि-
शिष्टवाचकानाञ्च पदानां सति पृथग् विशेषणवाचकपद
समवधाने विशेष्यमात्रपरतायाः "सकीचकैर्मारुत-
पूर्णरन्ध्रैः" इत्यादि महाकविप्रयोगस्थले दृष्टत्वेन प्र-
कृतेपि विशिष्टवाचकस्य साधारणपदस्य पार्थक्येन वि-
शेषणवाचकैकपदसमवधाने विशेष्यमात्र परतया युक्त-
मेकपदोपादानमिति न प्रेक्षावतां "सर्ववर्णसाधा-
रण एक एव" इत्यादावेकपदोपादानवैयर्थ्यशङ्का-
समुद्भव इति परीक्षका एव विभावयन्तु इत्यवोचामैव

यच्चस्वयमेव "नच जातिमात्रनिबन्धनत्वविशिष्ट सर्ववर्ण साधारणैकत्वाभावोत्र विवक्षितः स चात्र नास्तीति वाच्यम् । नञ्द्वयेन विशिष्टाभावस्य बोधयितुमशक्यत्वात्" इत्याशङ्किष्टादुदूषश्च तदिदमतिवैदुष्यम् अघटं भूतलंनास्तीति प्रतीति सिद्धाभावस्य घटशून्यता दशायां भूतलेङ्गी करणेन तादृश वाक्यस्य च नञ्द्वयघटितत्वेपि विशिष्टाभावबोधकत्वे न नञ्द्वयेन विशिष्टाभावस्यबोधयितु मशक्यत्वादित्युक्तेरज्ञत्तप्रलपितत्वात्। यद्यपीत्थञ्ज वक्तव्यं तथापि वादिनो त्यन्तापरिष्कृतस्थूलार्थग्राहितया पुनरस्थानकर्तनेनयुक्तमित्युदासे। यदप्यचान्तरालिकशङ्कासमाधानादिकंतत्तु सिद्धान्तितार्थ्यबोधनिबन्धनमनभिप्रेतं च सर्वथेति नोत्तरवितरण मर्हति यच्च "प्रातिस्विकपदस्य तत्तज्जातिसमनियतधर्मबोधाभिप्रायेणोच्चारणं युक्त मयुक्तं वेत्यपि सुधीभि रेव विभावनीयम्"इत्यन्तं तत्तु स्वस्य महापाण्डित्यं प्रदर्शितं यदसौ महामहानवधानवारिधि निमग्नःस्वीयमेवात्यल्पपङ्क्तिव्यवहितं "तदाशौचस्यप्रातिस्विकरूपत्वेन भवतिसद्धान्त कोटिप्रविष्टत्वेन" एतद्वाक्यस्थं तादृशप्रयोगं नावधारयति साधुतद्व "आत्मनो-

विज्ञमात्राशौत्येतदाभाणक नाटमम्। वयं तु अयमभ्या-
न्तप्रयोगः परमनवसरदुष्टतया न समाधिमर्हतीति ब्रूमः।
तदसौ प्रकृतप्रबन्धेन निजां सिद्धान्तिनो वा व्युत्पत्तिं
प्रदर्शितवानित्यत्रामत्सरा एव साक्षिणो विद्वांसः। व-
स्तुतस्तु "सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा। द-
शाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत्" इत्याङ्गिर-
सस्य न सामान्यतः सर्ववर्णसाधारणाशौच सन्देशकत्वं
तथासति शूद्रविषये "मासेनैव तु शुद्धिः स्यात्" इति
शुद्धितत्त्वे रघुनन्दनधृतस्य*वाक्येन "एकादशाहाद्ब्रा-
ह्मणो वैश्यो द्वादशभिस्तथा। शूद्रो विंशतिरात्रेण शुध्य-
ते मृतसूतके" इति शातातपीयादिना चोपरोधप्रसङ्गात्।
न ह्याङ्गिरोमहर्षिरपि प्रतारको यदेकत्र "एकादशाहा-
द्राजन्यः" इति विशिष्याशौचमभिमतवतः शातातप-
स्य स्वयं सर्वसाधारण्येनाशौचानुमोदकत्वमभिदध्या-
त् किन्तु क्षत्रियादिकन्यायां ब्राह्मणादिजातानामनु-
लोमानां ब्राह्मणादि

---

* आङ्गिरसम्।

नैवतु पित्रा सहैकत्र वसतां क्षत्रियादीनां दशाहाशौचं बोधयति। अयं चार्थःस्फुटितःपुनरापस्तम्बेन "क्षत्र-विट्शूद्रजातीनां यदाऽऽशौच सूतके। तेषां तु पैतृकं शौचं विभक्तानां तु मातृकम् इति अयमर्थः ब्राह्मणस्य युगान्तरे चतस्रो भार्या विवोढुमर्हा अभूवन्निति तासु समुत्पन्नाः क्षत्रियादयो बालाः कथमाशौचमाचरेयुरिति वि-चिकित्सायां ब्राह्मणेन पित्रा सह वसतां तेषां पैतृकं द-शाह मेवाशौचं विभक्तानां मात्रा सहवसतां तु मातृकं यज्जातीया माता तज्जात्युक्त माशौच मिति। अयंचा-र्थो मनुनाऽप्यनुमेने तथाहि "सर्वेष्वुत्तमवर्णाना माशौ-चं कुर्युरादितः। उद्दर्णविधिदृष्टेन स्नात्वा शौचं स्व-योनिषु" इति व्याचष्टेचास्य मपरार्कः "सर्वेब्राह्मणापेक्षया हीनवर्णाःक्षत्रियादयो ब्राह्मणाद्युत्तमवर्णजाता उत्तम वर्णसम्बन्धिनि जनने मरणे च सति उद्दर्णविधिदृष्टेन दशरात्रादिनाशौचं कुर्युःस्वयोनिषु जातेषु मृतेषु तु स्वमाशौचं कुर्युः जाबालेनाप्ययमर्थोभि नन्द्यते "नाना जातिषु पारक्ये पैतृकं जीवतःपितुः अतीतेमातृकं वि-द्यात्पारक्य मुभयोरपि" इतितदर्थश्च एकेन वक्तृषु परि-णीतासु नानाजातीय स्त्रीषुमध्ये पारक्येऽपरिणेतृजाति-

तः परा अन्या या जातिस्तज्ज्ञा तीयायाः स्त्रियाः प्रसवे-मरणे च तस्या एवपूर्वोत्पन्नः पुत्रः पितरि जीवति पितृजा-त्युक्त माशौचं कुर्य्यात् । अतीते पितरि मातृजात्युक्त मा-शौचम् । एवं पितृजीवनमरणयोरुभयो रपि समययोः पारक्य मेवाशौचंभवति पितुर्जीवनकाले मातृजातितः पारक्यं पृथगाशौचं पितृमरणे पितृजातितःपारक्यं-पृथगाशौच मित्यर्थस्तथाचैतेषां न स्वकीयमाशौचंक-दाचिदपीतितात्पर्यम् । अथवा "एतेषाम्" ब्राह्मणेन क्रमपरिणीतानां ब्राह्मणी क्षत्रियावैश्याशूद्रादाराणाम् "चतुर्णां वर्णानाम्" दारा वर्णा मुख्यत्र्वर्ण व्यवहारभा-जो ऽसंकीर्णत्वा दितितेषाञ्चतुर्णां वर्णानां ब्राह्मण संब-न्धिनि । तत्परिणीतब्राह्मणीसंबन्धिनि । ब्राह्मणी-पुत्रसंबन्धिनिवाआशौचेप्रसक्ते "दशाहाच्छुद्धिः" द-शाहेन सर्वाशौचनिवृत्तिरित्ययमाङ्गिरस भाषितार्थ-स्तेन वर्णपदे न जघन्यवृत्तिः संकीर्णसाधारणेन वर्ण तदितर संग्राहिका, नापि शुद्धिपदेलक्षणा, नचापि-प्रातिस्विकाशौचपक्ष मभिमतवतः शातातपस्योपरो-धो नचर्ष्यन्तर वाक्यविसंवादः प्रत्युत "हीनवर्णाना-मधिक वर्णेषु सपिण्डेषु तदाशौच व्यपगमेशुद्धिः" ॥

तदाशौचव्यपगमे ब्राह्मणा शुद्रर्णाशौच निवृत्ता विज्ञेयः इति विष्णुः । "शूद्रविट्क्षत्रियाणां तु ब्राह्मणे संस्थिते सति । दशरात्रेण शुद्धिस्स्यादित्याह कमलोद्भवः" इति कौर्मं संस्थिते । मृते । अपराणि च मन्वापस्तम्बादिवचनानत्रार्थं परम तुल्यानीति विभावयन्तु तत्रभवन्तो विद्वांस इति । तदेवं "सर्वेषामेव वर्णानाम्" इत्येतस्य न सर्ववर्णाशौचसाङ्कर्यबोधकत्वं तदभिमत मिति प्रव्यक्तमेव यथा च कलौ न सङ्कोच आशौचे तथाऽर्वागेव प्रतिपादित मिति नेह प्रतायते । यदप्यत्रैव प्रकरणे निजबुद्धिवैभवोद्भाविते प्रथमकल्पे" साधारण्यस्याऽप्रसक्तेश्च " इत्यभिधानं निषेधस्य प्रसक्तिपूर्वकतया साधारण्याप्रसङ्गेन न तन्निषेधो युक्त इतितात्पर्यकं तदिद मवधान मवधारयति भवतःकथमपि येन तथाहि येयं मीमांसकेन सह भवतःप्रवृत्तो विचारःस कीदृशीं व्यवस्था मास्थायेति पर्यालोचनायां दशाहाशौचपक्षो मुख्यःसर्ववर्णसाधारणोनवेति विप्रतिपद्यमानयोर्युवयोरिति वक्तव्यं ततश्च भावकोटिःसाङ्कर्यमिच्छतः असाङ्कर्यं तु प्रतिपादयतःपराकोटिः। इति त्वयैव सर्वसाधारण्यं यत्प्रसञ्जितमप्रामाणिकं तन्निराचिकीर्ष-

शा चास्मत्प्रवृत्तिरिति न साधारण्यप्रसङ्गशङ्का । तदे-वं निजाभिप्राय मनवगच्छतः पराभिसन्धानावधारण प्रत्याशा पुनरनर्थकरी दुराशैवेति क्षणं साम्ये विनिविष्ट-दृष्टिः स्वयमेवावेदयस्व यस्य "वदतो व्याघातात्" इत्याघातः स तु स्वस्यैव स्वहस्तेन शिर आघातः । यतो दशाहाशौ-चं सर्ववर्णानां व्यवस्थापयन्नपि दशाहाशौचं न प्रसक्त मित्याख्यासि व्याख्यासि चान्यथयन्नार्षवचननिचयम् इतिशम् यदपि निजबोधवैदग्ध्य मावेद्य साटोपम्

"अलं वा परव्युत्पत्त्युद्घाटनेन प्रकृतमनुसरामः तस्माद्ब्राह्मणातिरिक्तवर्णेष्वपि यस्मिन्देशे कुलेवा द-शाहाशौचमेव चिरकालात्प्रवृत्तं तत्र तदनुष्ठान मेव मुख्यं यत्र द्वादशाहादिकमेव तत्र तदनुष्ठान मेवेति सकल मकलङ्कम्"

इतिनिजौदार्य्यसंदर्शनं, तत्स्वीयपूर्वोत्तर सन्दर्भ-विघटितं सर्ववर्णानां द्वादशाहे सपिण्डीकृत्यन्यथानुपप-त्त्या कल्पान्तरबाधो पन्यासपुरः सरं पूर्वं दशाहपक्ष-स्यैव कलौ मुख्यत्वव्यवस्थापनात् । नहि द्वादशाहे सपि-ण्डीकरणस्य मुख्यत्वमाख्याय कालान्तरे सपिण्डीक-रणस्य चाऽमुख्यत्व मवस्थाप्य पुनर्दशाहमातिस्विका-

शौचपक्षयोरुभयोर्मुख्यत्वमाख्यातुं प्राक्ष उत्सहेतापि नच येषां द्विजकुलेषु शूद्राणामपि द्वादशाहे सापिण्ड्या-नुष्ठानं तेषामेव तन्मुख्यत्वव्यवस्थापकं दशाहाशौच-स्य, नेतरेषामिति पलायनसमुचितम् एवंसति-द्वादशाहे सपिण्डीकरणान्यथानुपपत्त्या दशाहाशौच-मुख्यत्वव्यवस्थापनप्रदर्शनानुपपत्तेस्तथासति दशा-हाशौचवतामेव द्वादशाहे सपिण्डीकरणस्य मुख्य-त्वलाभेन दशाहाशौचवत्त्वैव शूद्रादीनामसिद्धोप-जीव्यत्वाभावेन तदुपजीवकस्य द्वादशाहे सपिण्डी-करणस्याऽलब्धात्मनो हेतुभावेन प्रदर्शनाया उन्मत्त-प्रलपितत्वापत्तेः । किञ्चाऽसकृत् त्वं व्यवातिष्ठिपः प्रा-तिस्विकाशौचबाध वैदग्ध्यपुरस्कारेण दशाहपक्षमेवेति न ते पक्षद्वयसाम्याम्नानं युक्तं तथाहि मुद्रितव्यव-स्थायास्तृतीयपृष्ठे "तस्योक्तकात्यायनवचनानुसारेण स-र्ववर्णानां दशाहाशौचकल्प एवसङ्गच्छत इति सा-ध्वनुगृह्णतेऽयं कल्पः"

इति, तत्रैव च पृष्ठे पुनर्देवलवाक्य मुपन्यस्य "अ-नेन हेतूपन्यासपुरःसरं कल्पान्तरबाधाभिप्रायगर्भं द-शाहाशौचमेव सर्वसाधारणयेन विदधातिस्म" इति-

च स्पष्टमवोचं, प्रत्यवोचश्चापरत्रापि भूयांनैजव्यवस्थापत्रे प्रातिस्विकाशौचपक्षमिति साधीयसी ते चन्मता यद्येवं प्रतिकुर्वन्नपि शेषे साम्ये निविष्टदृष्टिकभावपि पक्षौसमावाख्यासि व्याख्यासि च सर्वानेव गौड महाराष्ट्र निबन्धानवधीर्य्य मनसैव यत्किञ्चिदिति विवेचका एव परीक्षन्तामिति शम् ॥ यच्च "शुद्धितत्त्वे मरीचिः 'यस्मिन्देशे यदाशौचं धर्म्माचारश्च यादृशः । तत्र तन्नावमन्येत धर्मस्तत्रैव तादृशः'

इति यद्धर्मशास्त्रगन्धौ शूद्रपर्यन्तानां दशाहा शौचाचारे शुद्धितत्त्वकृतां मरीचेश्चानुकूल्यकथन कदर्थनं तत्पतारणामात्रमर्थतत्त्वानभिज्ञानाम् । तथाहि शुद्धितत्त्वकृतः स्वच्छं प्रातिस्विकाशौचपक्षं व्यवस्थाप्य "आशुच्यं दशरात्रं तु सर्वत्राप्यपरे विदुः" इत्यादिवाक्यानां तत्तत्कर्मानुष्ठानमात्रौपयिकाशौचनिवृत्त्यभिप्रायकत्वं नतु सर्वाशौचनिवृत्तिर्दशाहेन किन्तु मनूक्तकालावधिनैवेत्युपपाद्य अप्राप्तवयस्कातिक्रान्ताद्याशौचनिर्णय चोपक्रम्य "तुल्यं वयसि सर्वेषामतिक्रान्ते तथैव च । उपनीते तु विषमं तस्मिन्नेवातिकालजम्" इतिस्मृत्यर्थनिर्णयावसरे उपनयनात्पूर्वं सर्ववर्णानां त्रिरात्रा-

शौचं व्यवस्थाप्य "यत्रचिराच्चिरं विप्रस्यात् प्रमाणबलबैश्ययोः" इति प्रकृतार्थे स्मृत्युपरोधं निरीक्ष्य द्राविडदेशेषु सर्ववर्णसाधारण्येनोपनयनात्पूर्वं तादृशाचारं चालोच्य देशभेदेनाच वचनयोर्व्यवस्थां मेनिरे तथाविधाशौचएवच द्रविडाभिजनेन चचादिना स्वयं देशान्तरनिवासिना देशान्तराऽभिजनेन वा स्वयं द्रविडदेशेषु निवसता किमाचरणीयमिति मीमांसोपस्थितौ 'येनास्य पितरो याता येनयाताः पितामहाः । तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्नरिष्यति' इतिमानवमुपन्यस्य देशान्तरनिवासिनापि स्वकुलपरम्परोचिताचारवता भवितव्यमिति च वयवस्थापयामासुः । एतेन यत्

"मनुरपि 'येनास्य पितरोयाता येन याताः पिता महाः। तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यतीति सतांमार्गमित्यस्य शास्त्रबोधितं मार्गमिति फलितार्थस्तेन नातिप्रसङ्गः"

इति, तदनादेयं प्रलपितं पूर्वोक्तरीत्या स्मृत्यनुमताबाधितेऽर्थे कुलोचिताचारपरम्पराया व्यवस्थापकत्वस्य सर्वशिष्टैरनुमतत्वात् ॥

॥ अथ आद्यश्राद्धकालनिरूपणम् ॥

यद्यपिदशाहमातिस्विकाशौचशास्त्रार्थ एव प्रक्रान्त इति विषयान्तरे विचारारम्भो वादिनः पलायन पारायणप्रावण्यमेव साधयति तथापि लोकानां विषयव्यामोहो माभूदिति तदप्यानुषङ्गिक मनुपेक्षणीय मिति। निरूपण मर्हति तत्र सर्वस्याप्याचारस्य लोके परैर्विगानकरणाच्छिष्टपरिग्रहविशुद्धिशुद्धैः प्रमाणैरेव व्यवहर्तव्यमिति प्राज्ञा एवं स्थितौ विप्रतिपत्तिः। स्वजात्युक्ताशौचमाचरतां क्षत्रियवैश्यादीनामेकादशेह्न्याद्यश्राद्धानुष्ठानं धर्म्यं नवेति, तत्र धर्म्यमिति सिद्धान्तिनः अतथा भूतमिति परे। अत्र स्वजात्युक्ताशौचमित्याद्युक्तौ सिद्धसाधनं, परेणापि क्षत्रियवैश्यादीनां दशाहपक्षे एकादशेह्न्याद्य श्राद्धस्याभिमतत्त्वादिति तदुपादानम्। अत्र प्रमाणानि निर्णयामृत मदनरत्न रत्नाकरपारिजातापरार्कमिताक्षराप्रभृतिप्राचीनतमसान्य निबन्धोद्धृतानि, "मृतेहनितुकर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरं प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेहनि,, इतियाज्ञवल्क्यीयम् "एकादशेन्हि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम्। चतुर्णामपिव-

र्णानां सूतकं तु पृथक् पृथक्" इति, पैठीनसिः "आद्यं आद्गमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः" इति, शाङ्कं निर्णयामृताद्धृतं "सर्वेषामेव वर्णानामाद्यमेकादशेऽहनि" इति वचनानि। अत्र शाङ्कस्यापि शब्दस्यावधृत्यर्थकतया भिन्नकुलतयाच आद्यं आद्गमशुद्ध एकादशेऽहन्येव कुर्यादित्यर्थलाभस्तेन येषां कुले तथाचारस्तेषामेव याचरतां प्रत्यवाय एवेति तु तत्त्वम्। नच याज्ञवल्कीयस्यैकादशाहपदस्याशौचान्तकालोपलक्षकत्वादपरेषां चानाकरत्वेनाप्रामाण्यात् कथमाद्यश्राद्धं क्षत्रियादेरेकादशेऽहनि धर्म्यमिति शङ्क्यम्। एकादशाहपदस्येह विधेयसमर्पकत्वेन तत्र जघन्यवृत्तेरन्याय्यत्वात्। तथाहि भट्टाः "विधौ न परः शब्दार्थः" इति, नाप्यनाकरत्वेनापरेषामप्रामाण्यं तथासति "सर्वेषा मेव वर्णानां सूतके मृतकेतथा। दशाहाच्छुद्धिरेतेषामितिशातातपोऽब्रवीत्" इत्यादीनामाङ्गिरसस्मृतावनुपलम्भदोषदूषितानां त्वया स्वार्थप्रसाधकत्वेनाभिमतानामप्रामाण्ये त्वदीयसाहसस्य सहसैव विलयप्रसङ्गादिति प्रमाणत्वेनाभिमतानां वचसामाकरेऽनुपलम्भेऽपि प्रामा-

णिक निबन्धेषूपलम्भ आवश्यकः, आधुनिकानुपलम्भस्तु वैदिकशाखाविच्छेदवदनेकधोपपादयितुं शक्यत इत्यगत्याऽवलम्बनीयमिति क्व तेऽप्रामाण्योद्भावनप्रत्याशाप्रसर इति स्वयमेवावेहस्व। यदप्यत्र धर्म्यमाचारमुन्मूलयिषुः कश्चित्

"एवंशाद्वादौ गौडनिबन्धमनुसरतां पञ्चदशाहाशौचं च मन्यमानानां वैश्यानामेकादशेऽहनि आद्य श्राद्धमशुद्धमेव तथाच मरीचिः 'आशौचान्ते ततः सम्यक् पिण्डदानंसमाप्यते। ततः श्राद्धं प्रदातव्यं सर्ववर्णेष्वयं विधिः"

इति, तदत्यन्तमन्दम् यतो गौडग्रन्थेष्वेव गौडीयरुवीचारप्रसारकेषु आसमुद्र मखण्डप्रचारेषु निर्णयामृत मदनरत्नापरार्कमदनपारिजातप्रभृतिषु सावधारणमेकादशेहन्येव क्षत्रियादीनुद्दिश्याद्यश्राद्धं विहितं। तथाहि निर्णयामृतम् "अत्राप्याद्यमासिकमेकादशेऽहन्येव कुर्य्यात् तदाह याज्ञवल्क्यः 'मृतेऽहनितुकर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि' प्रतिमासं प्रतिसंवत्सरं चेत्यभिधाय आद्यमेकादशेऽहनीत्युक्तत्वात् अःद्यमासिकमाद्याब्दिकं

चैकादशेऽह्नि कुर्यात् । अनेनाभिप्रायेण गोभिलोप्या-पस्य द्विरावृत्तिमाह "ब्राह्मणान् भोजयेदाद्ये होत-व्यमनलेऽथवा । पुनश्च भोजयेद्विप्रान् द्विरावृत्तिर्भवे-दिति" इति अतश्चैकादशेऽह्नि विधीयमानमाद्याब्दिकं प्रथमेऽब्देऽतीते द्वितीयाब्दारम्भे मृताहनि विधीयमानं द्वितीयाब्दिकमेवं तृतीयाब्दारम्भे मृताहे विधीयमानं तृतीयाब्दिकं चतुर्थारम्भे विधीयमानं शुद्धमतश्च मर-णदिनमारभ्य त्रिषु व्यतीतेषु विधीयमानं श्राद्धं शुद्ध-मित्यर्थः । आद्यं श्राद्धं क्षत्रियादिरपि एकादशेऽह्नि कु-र्य्यात् तदाह वृद्ध वसिष्ठः " एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतं । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक् पृथक् " ननु शुचिना तत्तु कर्तव्यमिति विधानात् क्षत्रियादेरेकादशेऽह्नि सूतकानपगमात्कथं श्राद्धाचर-णमिति चेत्सत्यम् लौगाक्षिणा कर्तुस्तात्कालिकशुद्धे-रभिधानात् । आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशेऽहनि कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः " इति, नन्वेवं सति ब्राह्मणमुख्ये मृताह एवाद्यं श्राद्धं कुरुतां तस्यापि तात्कालिकशुद्धेर्वक्तुं शक्यत्वादिति चेन्न त-त्रविधानाभावात् । आद्यमेकादशेऽहनि, इत्येकाद-

शेहन्येव विधानाञ्च अतश्चैकादशेऽन्हि विहित माद्यं श्राद्धं क्षत्रियादिरशुद्धोपि कुर्यात् नत्वाशौचान्त इत्य लमतिप्रपञ्चेन" इत्यभिहितम् । एवं मदनरत्नेपि "क्षत्रियादिभिरप्येतदाद्यं श्राद्धं सत्यप्याशौचे एकादशेहन्येव कर्तव्यम्" इत्युक्तं बहुना प्रमाणप्रदर्शनपुरस्कारेण, एवमपरार्केऽपि गौडानांप्राचीनतमे निबन्धे शङ्खः "आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्यादेकादशेहनि । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेवसः "पैठीनसिः" सद्यः शौचेपि कर्तव्यं प्रेतस्यैकादशेहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्ध शय्यासनादिषु । अपिशब्दोत्राशौचेऽपि सतीति निगमयति इत्याद्युपपाद्य "क्षत्रियवैश्यशूद्राणां तु द्वद्वशस्विष्ठः सप्तमे च तृतीये च प्रथमे नवमेतथा । एकादशेन्हियच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक् पृथक्" एकादशेहनि श्राद्धं चतुर्णामपि वर्णानां सामान्यमित्यर्थः तद्ध्याशौचकालस्य दातुस्तिलाञ्जलिरित्याह । स एव चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक् पृथगिति सूतकाशौचमित्यर्थः । इति स्फुटमेवाद्यश्राद्धं क्षत्रियादिना सूतकिनाप्येकादशे-

छातत्र्यमित्युक्तमिति के ते गौडा यानभिप्रेत्यैषा ते शिरोघूर्णना, मन्ये येषां पुस्तकान्यपि देवाक्षरेषु न मिलन्ति क्व नामतदुक्ताचारप्रचारसङ्कीर्तना एवंविधेष्वेव ग्रन्थेषु भवेत्कदाचित्किञ्चिद् विमहत मिति वैश्यास्तन्मतानुसारिण एव किं वक्तव्या एवं च सति मन्मतानुसारिणो वैश्याः कथं मामुल्लङ्घयुरित्येव ते पर्याप्तमिति कस्य हेतोरेषा दुर्नियन्त्रणा। किञ्च "श्राद्धादौगौडनिबन्धमनुसरतां वैश्यानाम्" इत्यादिना किं विवक्ष्यति श्राद्धीययत्किञ्चिदितिकर्तव्यतावगमको गौडीयवाक्यकलापः साङ्गतदितिकर्तव्यतावगमको वा तत्र प्रथमे विनिगमनाविरहेण दूषणगणप्रकिरणेन च द्वितीय एव पक्षोऽवलम्बनीयस्तथाच शौचाशौचादेरपि तदुपयोगितया कथमाशौचं भवता सकलगौडग्रन्थजातामनभिप्रेतं प्रत्युत शतशो गौडमहाराष्ट्र सकलशिष्टैरतिविगीतमाशूद्राद्दशाहरूपमङ्गीक्रियते इति वैदेशिका वयमेतस्यास्त्वदीयगहनावगाहितायाः, यच्चमारीचम् "आशौचान्ते ततः सम्यक्पिण्डदानं समाप्यते" इत्यादि, तत्तु आपन्नत्वचादिविषयकमित्यसकृदावेदितमित्यकिञ्चिदिदम्।

वस्तुतस्तु पित्रा ब्राह्मणेन सहैकत्र वसतां क्षत्रियादिगर्भोत्पन्न क्षत्रियादीनां दशाहाशौचिनां तात्पर्येण मारीचवचन मत एव " आशौचान्ते ततः सम्यक् पिण्डदानं समाप्यते " इत्युक्तं दशगात्रपिण्डदानस्य क्रमिकस्य तत्र परिसमाप्तेरपरेषां तु न तथेति सुधिय एव विभावयन्तु यदपि " विष्णुरपि अथाशौचापगमे, इतिसामान्येनोपक्रम्याद्यश्राद्धकर्तव्यतामाह । हारीतेना प्याशौच समाप्तिमुपक्रम्य श्वोभूत एकोद्दिष्टं कुर्यादित्युक्तम् " इति केनचिदुक्तं तत्तु तदीयं धर्मशास्त्रानवलोकननिबन्धनं सर्वत्र गौडनिबन्धेष्वेतद्देशीयाचारप्रचारकेषु वैष्णवस्य हारीतस्यच ब्राह्मणविषयकत्वव्यवस्थापनात् । यत्तु "मत्स्यपुराणेपि 'एकादशेऽहनि तथा विप्रानेकादशैव तु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजानित्युक्तम् । अतएव सद्यः शौचे द्वितीयेऽह्न्येवाद्यश्राद्धं प्रामाणिकशिरोमणिभिर्ढौंढुशूलपाणिस्मार्तगौडैः सिद्धान्तितम् "

इति, तदपि गौडग्रन्थानवलोकनकृतं साहससमाघातं च मात्स्यस्य रुद्रगणश्राद्धपरतायाः मान्यगौ-

डमहानिबन्धेष्वभिधानात् * सद्यः शौचे द्वितीयेऽहन्याद्यश्राद्धानुष्ठानकथनं तु स्मार्तगौडस्य निर्मूलमेव "आद्यमेकादशेऽहनि" एतस्य विधेयसमर्पकत्वेन जघन्यहस्यसम्भवेन विधवाद्युक्तेश्च विशेषविषयकत्वेन शेषस्य च तादृशविधेरसम्भवेन प्रत्युत "सद्यः शौचेपि दातव्यं प्रेतस्यैकादशेऽहनि । स एव दिवसस्तस्य श्राद्ध शय्यासनादिषु" इति हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदयधृतपैठीनसिवाक्यसत्त्वेन सद्यः शौचस्थले द्वितीयेऽहन्याद्यश्राद्धानुष्ठानं शास्त्रविरुद्धमेव । अत्र हि सद्यः शौचेपीत्यपिकारेण तद्व्यतिरिक्तस्थलेप्याद्यानुष्ठानमेकादशेऽहनि बोध्यते । "सएव" इत्येवकारेण च व्युदस्तदेवपैठीनसिर्दिनान्तरमित्यपि निरीक्ष्यताम् । अतएव त्र्यहाशौचस्थले औशनसं "त्र्यहाशौचेपि कर्तव्यमाद्यमेकादशेऽहनि" । इति, अतएव निर्णयसिन्धुकारः "अतोऽत्र द्वितीयेऽन्हि एकादशाहं वदन् हारडुः शूलपाणिः स्मार्तगौडश्च परास्ताः" इति, युक्तं चैतत्प्रात्यक्षिर-षिवाक्यविसंवादे तत्पक्षपरिग्रहस्यान्याय्यत्वात् तस्माधुते व्रतं, यद्देवापकृष्टं क्वचित्कदाचित्कस्मिंश्चिदपि गौडग्रन्थे तद्देवानुसर्तव्यं युक्ततमं सर्वगौडनिबन्धसम्म-

सिद्धमाशौचव्यवस्थादिकं तु क्वापि नेक्षणीय-मिति । यच्च " यत्तु शङ्खः आद्यं श्राद्धमशुद्धोपि कुर्या-देकादशेहनि । कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरे-वसः' इति यच्च पैठीनसिः 'एकादशेन्हियच्छ्राद्धं तत्सा-मान्यमुदाहृतं । चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक् पृथगिति, तयोस्तु" प्रदर्शितमरीच्याद्यनेकमहर्षिवचन-विसंवादादनाकरत्वं महर्षिकल्पैः कल्पतरुकारवा-चस्पतिमिश्रप्रमुखैरेवोक्तमिति नास्माभिस्तत्खण्डना-य प्रयतनीयम् "

इति वाचस्पत्यदुरभिधानाङ्कशयनसुखास्वादः सो-पि शास्त्रावलोकनालसानां नाममात्रश्रवणविलसच्छ्र-द्धानां केषांचिदेव शोभतां, प्रमाणपरतन्त्रेभ्यस्तु न रोचते कदाचिदपि । तथाहि । आशौचान्ते श्राद्धप्र-ज्ञापकवचसां ब्राह्मणपरतया " आद्यमेकादशेहनि " इत्यत्र प्रमितान्वयानुपपत्तेरभावेन विधेयसमर्पकतया च लक्षणायादुर्वचतया मरीचिवचनस्य चानेकधा व्य-वस्थायाः प्रदर्शनेन ऋषिवचन विसंवादसम्बन्धगन्धोपि नच वैष्णवादिवचसां सामान्यत आशौचान्ते श्रा-द्धविधायकानां विशेषविषयकत्वव्यवस्थापनमेव तव गौ-

रवमिति वाच्यम्। याज्ञवल्क्यवचनस्यैकादशाहपदे-लक्षणाऽसम्भवेन तत्र त्वत्प्रकल्पनीयब्राह्मणमात्रपरत्व-स्थानीयत्वेन सर्ववर्णीयदशाहाशौचनिष्ठत्त्वभिप्राय-कत्वप्रकल्पनास्थानीयत्वेन वा कल्पनाधिक्यविरहात्। वस्तुतस्तु सर्ववर्णसाधारण्ये नोपक्रम्य बौधायनबोधितै-कादशाहीनाद्यश्राद्धस्य भवता ब्राह्मणविषयकत्वमा-पन्नक्षत्रियाद्याशौचविषयकत्वं वा कल्पनीयमिति तवै-वैतत्कल्पना प्रयुक्तं गौरवमिति स्फुटम्। वयं तु "मृतेहनि तु कर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। प्रति-संवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेहनि" इत्येतद्वचोबोधित-सांवत्सरिकमासिकादिश्राद्धस्य सर्वसाधारण्येन त-देकदेशबोधिताद्यश्राद्धमात्रे ब्राह्मणादिविषयविशे-षविषयकत्वकल्पनाया अयुक्तत्वान्न तावन्मात्रस्य वि-शेषविषयकत्वं शक्यकल्पनम्। यथाहुर्वृद्धाः "नहि कुक्कु-ट्या अर्द्धस्यैको भागः पाकायाऽपरश्च प्रसवायेति" त-स्मादाद्यश्राद्धमात्रे ब्राह्मणविषयकत्वकल्पना न युक्तेति ब्रूमः॥ तस्मादेतावतो निर्णयामृतमदनरत्नमदनप्र-दीपापरार्कमिताक्षरामदनपारिजातश्राद्धकाशिका-दिप्राचीनतमसमान्यनिजनिबन्धोपनिबद्धमाचारमुपेक्ष्य-

माणोवितथेष्वेव तथामतिरलस इति सुनिपुणम् । यदप्यत्रैव "महर्षिकल्पैः कल्पतरुकाररत्नाकरस्मृतिमिश्रप्रमुखैरेवोक्तमिति नास्माभिस्तत्खण्डनाय प्रयतनीयम् इति तदपि हसनीयं यतो यत्र क्वापि भवता लिखितं तत्र किं, निराकरणमभवद् यत्त्वं ब्रूषे नात्र प्रयतनीयमिति यत्र भवता यतितमपि निराकरणाय तत्र समप्रसवस्तेऽनर्थनिवहो यथा सर्ववर्णसाधारणं दशाहाशौचपक्षं मुख्यतया व्यवतिष्ठापयिषोर्द्वादशाहे सपिण्डीकरणस्य मुख्यत्वाभिधानमनर्थप्रसवो गारुडत्वाभिधानं क्वचिमेषु परः प्रसवो-यथा वा वैश्यानां दशाहाशौचपक्षं कथयतः सर्वमान्यप्राचीनतमहारलतादिनिबन्धावधीरणा यथावा स्वोक्तं यथाशक्तिनिर्वहतो विप्रापचारपरम्परेतिकिं बहुना विद्वत्सु ॥ तथापि ॥ यातु

" निर्णयसिन्धुकारेणैतद्वचनद्वयमुदाहृत्य पूर्ववाक्यानामेव विशेषविषयकत्वं व्यवस्थाप्य कल्पतरुप्रभृतीनामप्यपास्तत्वमुक्तं तत्तु चिन्त्यं प्रतिभाति" इति सादुराशैव किमयं नियमो यदि निर्णयसिन्धुकारेणैवास्तविकं केषाञ्चिद्वचसामनाकरत्वमभिदध्यास्त-

हि कल्पतरुकारस्यानभिज्ञानजन्यमप्ययनाकरीयत्वा-
भिधानं तेन सोढव्यमिति यच्च यच्च निर्णयसिन्धुकारै-
र्येषां वचसामनाकरत्वमभिहितं तत्र तत्प्रामाणिक
निबन्धानुद्धृतत्वनिबन्धनमिति तद् युक्तमेव, इह तु
प्राच्योदीच्यप्रतीच्यावाच्यगौड़महाराष्ट्रयावन्महामा-
न्यनिबन्ध कृदुद्धृतानां वचसां प्रामाण्ये न कस्यचिद-
पि संशयसमुत्पत्तिरिति । यदपि

" परश्चैदाचारपरित्यक्तानामनेकस्मृतिविरुद्धा-
नां महानिबन्धेष्वनुपलब्धानामनाकरत्वं ब्रूयादपास्तः
क्रियत इत्यप्यहेतुकम् " इति,

तदपि लौकिकशास्त्रीयोभयानभिज्ञतानि-
बन्धनम् । तथाहि । काश्यामेव वैश्यवंशावतंसानां
लोकप्रख्यातयशसां विवेकिनां कुलेष्वव्याहतप्रचारो-
यमाचार एकादशाहीनाद्यश्राद्धानुष्ठानस्य, अत एव तु
एकादशाहनिवैश्यादेराद्यश्राद्धं द्विषतोपि वस्तुया-
थात्म्य गोपनासमर्थस्य समुपलब्धाविरलतरप्राच्य
देशमात्राचारस्य वैश्यादेरेकादशाहीनाद्यश्राद्धमुद्दि-
श्य"

" तस्मादयं प्राचामाचारो दुराचार एव " इत्यभि-

धानं शूलपाणेः इत्याचारपरित्यक्तानाम्” इति तेऽभि-धानम युक्तमेव। स्मृतिविरोधस्तु प्रथमत एवापासित इति न किञ्चिदिह वक्तव्यं, यच्च महानिबन्धानुपल-म्भःपुन रात्य श्राद्धस्यैकादशे हनि कर्तव्यताबोधकव चसां सतु अदृष्टाश्रुतधर्मशास्त्राणामेव नापरेषां के ते महानिबन्धा येषु नोपलम्भोऽमीषां मन्ये कदाचिद्भवतो-भिमताः केचनापरे एव महानिबन्धा येषामिह न प्र-चारः परं पारसीकादिदेशे स्यादिति चोदीयसि पु-नरशास्त्रीयेस्मिन्विषये वक्तलेखो समास्यशास्त्रज्ञता-मावहतीति त्यज्यते। यापि

“शङ्खः ‘ततः श्राद्धमशुद्धौ तु कुर्यादेकादशेह-नि कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेवसः’ अशुद्धौ चतुर्थाहादौ। तथैकादशे कर्तव्यं कथमशुद्धौ श्राद्धं शौ-चस्याधिकारिविशेषणत्वात्। कालाशौचाधिकरणे दर्शितमित्याह कर्तुस्तात्कालिकीति श्राद्धविधानापे-क्षयातावन्मात्रनिष्ठा शुद्धिः कल्प्यते स पुनरशुद्ध एव कर्मान्तर इति शेषः। व्यासः एकादशे चतुर्थे च मासि मासि च वत्सरम्। प्रतिसंवत्सरं चैव मेको-द्दिष्टं मृताहनि। वत्सरं व्याप्य मासि मासि कार्य

मिति सम्बन्धः । मत्स्यपुराणे "तत एकादशाहे तु द्वि-
जानैकादशैवतु । क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो-
द्विजान् । द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत्" ।
एकादशाहे द्विजभोजनं फलातिशयार्थमेकादशाहश्रा-
द्धं न क्षत्रादिविषयमित्याह क्षत्रादिरिति क्षत्रादिः पु-
नराशौचान्ते श्राद्धं कुर्यात् । अतःशब्दः समीपव-
चनः अतएव विष्णुः "अथाशौच व्यपगम इति" एवं-
चैकादशाहश्राद्धविधायकानि यानि बौधायनवचना-
नि तानि ब्राह्मणविषयकाणि आशौचान्तोपलक्षणानि
वा मत्स्यपुराणे विष्णुवाक्यैकवाक्यत्वात् । ननु मु-
ख्यैकादशाहे चातुर्वर्ण्यं श्राद्धविषयाणि । मत्स्यपुराण
विष्णुवचनविरोधाच्च । किञ्च "राज्ञां च दशमः पिण्डो-
द्वादशेऽहनि दीयते । वैश्यस्य पञ्चदशमे तु देयस्तु दश-
मस्तथा । शूद्रस्य दशमः पिण्डोमासे पूर्णेऽह्नि दीयते"
इत्यादिपुराणवचनात् । पिण्डः शूद्राय दातव्यो दि-
नान्यष्टौ न वायवा । "सम्पूर्णे तु ततो मासे पिण्डशेषं
समापयेदिति" प्रचेतोवचनाच्च । द्वादशपञ्चदशत्रिं-
शद्दिनेषु क्षत्रियवैश्यशूद्राणां दशमपिण्डदानावगते-
स्तेषामप्याशौचान्त एव श्राद्धं युज्यते । एवं चैकाद-

१२

शाहस्मृतेराशौचान्तोपलक्षकत्वे त्र्यहैकाहाशौचेप्या-
शौचान्त एव श्राद्धमितीन मुख्यदशाहे एव दशमपिण्ड-
दानं समाप्य चतुर्भिरेव वर्णैः सम्पूर्णत्र्यहैकाहाशौ-
चिभिरेकादशाह एव श्राद्धं निर्वर्त्यते इति प्राचामा-
चारो दुराचार एव" । एवं व्यवस्थापयतः शूलपाणेस्तु
विभीषिका सा नास्मासु प्रभवति तेन मान्यनिबन्धो-
द्धृतस्य शाङ्खवचसोर्थव्यवस्थापनाया असम्भवसुलभे-
त्यपपाठं प्रकल्प्यार्थप्रदर्शनेन तस्यास्माभिः प्रमा-
णपरतन्त्रैरनादरणात् । नहि शूलपाणिग्रन्थानु-
यायिभिरपि एकस्य शूलपाणेः कृते प्राचीना एता-
वन्तो जगन्निवस्तारो मान्यनिबन्धकृतोऽपपाठं लि-
खितवन्त इति शक्यं वक्तुं तस्मात् "त्यजेदेकं कुल-
स्यार्थे" इति न्यायेनानायत्त्या शूलपाणिधृतं शाङ्ख-
मपरं ग्रन्थान्तरोद्धृतशाङ्खवचनाद्भिति वक्तव्यमथवा
शूलपाणेरपपाठ प्रकल्पना कल्पनीयेत्युभयथापि शू-
लपाणिर्न विविभीषणेनः । परं तेषां विभीषकोये
पुनरनादृत्य मानवादि धर्मशास्त्रं वैश्यादीनां दशा-
हाशौचपक्षमुपक्षिपन्त एकादशेऽहनि आद्यश्राद्धा-
नुष्ठानं ब्रुवते । तथाहि । पूरकपिण्डसमाप्तिं विना

नाद्यश्राद्धविधानं पूरकं च क्षत्रियादेर्न दशमे तथाचा दिपुराणम् शूलपाणि श्राद्धविवेके "राज्ञां च दशमः पिण्डो द्वादशेऽहनि दीयते ॥ वैश्यस्य पञ्चदशमे तु देयस्तु दशम स्तथा" ॥ शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे पूर्णेन्हि दीयते" इति । प्रचेतासश्चापि "पिण्डः शूद्राय दातव्यो दिनान्यष्टौ नवाथवा । संपूर्णे तु ततो मासि पिण्डशेषं समापयेत्" इति ततश्च पूरकासत्त्वे कथमेकादशाहे वैश्यादेराद्यम् नचैष उपरोधः प्रातिस्विकाशौचमुपक्षिपतोप्यावश्यकः ॥ वैश्यादिनाऽविहितपूरकपिण्डेनैकादशेऽहनि आद्यश्राद्धानुष्ठेयतायास्त्वयापि कक्षीकरणीयत्वादिति शङ्क्यम् वैश्यादेरेकादशेहन्यशुद्धिमतोपि वाचनिकया आद्यश्राद्धप्रवृत्तेर्वक्तव्यतया "विधिस्पृष्टे दोषानवकाशन्यायेन" अशुद्धिमतेव अविहितपूरकपिण्डेनाप्याद्यश्राद्धानुष्ठेयतायाः कल्पनीयत्वात् अतएव तु सावहेलम् "एतेन दशमपिण्डोत्कर्षपक्षे अवयवपिण्डासमाप्तौ कथमेकादशाहे श्राद्धमिति मूर्खोक्तिः परास्ता वचनादाशौच मध्य इवतत्राप्यविरोधात्" इति निर्णयसिन्धुरितिशम् ॥ यत्तु

आस्तांवाऽस्मीहश्यपि तदुक्तिः एतद्देशीयैः स्वदेशीय निब- न्धविरुद्धांशस्यापिदेशान्तरीयनिबन्धेभ्यउपादाने आ- चारमात्रमेतद्देशीयानां विलुप्तं स्यात् देशान्तरीय नि- बन्धविशेषसिद्धान्तितस्य मातुलकन्यापरिणयस्याप्युपा- दानाय कदाचिद्व्यवस्था प्रवर्तेत तस्मादेतद्देशप्र- सूतस्य सकाशादग्रजन्मनः । स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवा इति । मनुस्मृति मनुस्मृत्यनानथ महोरुहसमारोहोऽभिलषणीयः इति

तत्साधु यतो धर्मतत्त्वान्वेषणस्यातिगहनतया धार्मि- काः स्वदेशीयसज्जनपरिगृहीतमेव धर्ममाहुःपर- मयमाद्यश्राद्धानुष्ठानाचारः क्षत्रियवैश्यादेरेकादशे- ऽहनि आशौचान्तरालकालेपि प्राचीनतम निजमा- न्यतम यावन्निबन्धसिद्ध इति तमभिप्रेत्यैतत्ते भिधानं त्वदीयं ज्ञानगरिमाणमेव निगमयति यथाचाद्यश्राद्ध- मेकादशेऽहन्याशौचेपि विधेयं तथापूर्वमेवासकृत्प्रमाण- पारायणं प्रावोचामेत्यलमाम्रेडनेन यच्च मनूक्तमेतद्दे- शीयेभ्योऽपरेषामाचारशिक्षणं तदपि युक्ततमं पर- मिदं प्रकृतानुपष्टम्भकं नहि कश्चिदाचार्यं मन्यमना दुराचारं प्रवर्तयिषुरप्याहोपुरुषिकया " एतद्देश-

प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः” इत्यभिदधानोऽनुपहसनीयोऽनुपेक्षणीयश्चार्याणामिति मानवीमेव स्मृतिमनुसृत्य सर्वथाप्यवहेलनीय इति शम्॥ यदपि एतदेवाभिप्रेत्य श्राद्धविवेककारिणा रुद्रधरोपाध्यायेन इत्यादिना प्रलपितं तत्तु पुनराशामोदकाशनायोपशमितनिजनैर्बल्यस्य तत एवापन्नसर्वाङ्गोपाङ्गबलवीर्यस्य बलवत्तम शब्सैन्यदलोपमर्दनं यतः पूर्वोपदर्शितसुनिवचनप्रपञ्चेन सुव्यस्थापिते क्षत्रियवैश्यादीनामेकादशाहीनाद्य श्राद्धानुष्ठाने कस्यचिदाधुनिकस्योपरोधप्रदर्शना नितरामकिञ्चित्करी नहि शरीराल्लाध्यासिनश्चार्वाका अत्रमान्यन्त इति वेदान्तशास्त्राणि नोपास्यन्ते अत एव मदनपारिजातप्रभृतयः क्षत्रियवैश्यादीनामाशौचान्ताद्यश्राद्धपक्षं समूलघातमघ्नन् इति शम्।

श्रीनित्यानन्द कुलवर्णनम्

आसीदसीमसरलाद्भुत साधुभावः
सौजन्यनन्दितजगज्जनतान्तरङ्गः॥
सद्धर्मशर्मधरणैकधुरीण धीरो
धीराग्रणीः क्षितिसुरो हि घसीटरामः॥ १॥
तस्याऽभवद्भगवदङ्घ्रिसरोरुहालि

मौलिर्यशः परिमलस्पृहणीयवृत्तः
पाण्डित्यनित्यरसिकस्तनुजः प्रदीपो
वंशस्य भूसुरवरः खलु भीमसेनः ॥ २ ॥

द्विरुक्त तस्मादस्मांयोऽशीविभावो
भावाभिज्ञो जैमिनीयाम्बुराशेः
जातो धर्माध्वन्यधन्यैकदीक्षः
श्रीमान् नित्यानन्दनामाऽयमार्यः ॥ ३ ॥

महानुभावोऽयमिमां व्यवस्थां
समीचितुं मेन्तिकमैरिरद्यत्
यथामति प्रेक्ष्य मयापि चैत
त्प्रत्यर्प्यते तस्य महात्मनस्तत् ॥ ४ ॥

इति श्रीमद्ब्रह्मामृतवर्षिणी सभासंपादकरामभि-
श्रशास्त्रिप्रणीतशुद्धिसर्वस्वे आनुषङ्गिकं प्रलापप्र-
मार्जनं नाम तृतीयो निष्कः ।

॥ श्रीः ॥

संवत् १९४१ वैशाखशुक्ल ७ गुरुपुष्ये
श्री ५ मीमांसकपण्डितनित्यानन्दजी श्री धर्मसं-
रक्षक काशीस्थविद्वन्मण्डली को सबहुमाननिवेदन
यथामति मैने सर्ववर्णके दशाहाशौच व्यवस्था की

समालोचना कियो है यद्यपि यह व्यवस्था पूर्वापर अत्यन्त असंगत असमंजस कुमारक्रीडामात्र ही है इस पर कुछ लिखना आवश्यक न था परंतु आप महान् है इस हेतु आपके आज्ञानुसार लिखा है इसमे जो न्यूनाधिक होय उसे आप संशोधन करियेगा ॥

भवदिच्छाकारी कश्चित्

राममिश्रशास्त्री

अब हमें तो इस व्यवस्था के देखनेसे यह वक्तव्य है धन्य हैं श्री ६ नित्यानन्द मीमांसक जिनने यह आशौचाध्य निवृत्त किया और धन्य हैं श्री ६ राममिश्रशास्त्री जो जिन का यह केवल सातही दिन का अनायास सिद्ध कार्य है यदि ये महाशय मास दो मास लिखैं तो महाभारत से भी अधिक ग्रन्थ हो जाय हम तो यही प्रार्थना करते हैं कि ये महाशय चिरंजीवी होंय और भारतवर्ष को विद्या कीर्ति को बढ़ावै ऐसेही महान् विद्वानो से प्राचीन ऋषि मुनि लोगों का कीर्ति स्तम्भ खड़ा है ॥

मैं विनय से प्रार्थना करता हूं कि इतः परं आप ऐसी

अशुद्ध व्यवस्था बना कर महात्मा लोगों को क्लेश मत दीजिये तथाहि,

पूर्वं यथा रभसतः किमपि व्यलेखि
प्रत्यस्तशस्तमखिलं खलु सारशून्यम् ॥
मानाम धर्म्य विषयेऽच पुनस्तथाभू-
द्यस्मादधर्म्यवचसो वरमेव मौनम् ॥ १ ॥
मानाम धार्मिक धुरीणमहामहिम्नो
वाराणसेयविदुषोजनतान्तराणाम् ॥
दुर्भावनासु निपतन् स्वयमानयस्वो
त्प्रेक्षासु, साम्प्रतमपीह भव प्रबुद्धः ॥ २ ॥

आप वादि प्रतिवादि, औ मध्यस्थ सर्वविद्वन्मंडली का चरण सेवक, औ गुणग्राही औ वैश्यगण का अगण्य भ्राता

श्रीकृष्णशरण गुप्तः

PREFACE TO THE ENGLISH VERSION.

The circumstances which led to the compilation of the Sanscrit original of this book, may be briefly stated thus:- At the instance of one of the bankers of Benares, a meeting of Pandits was held, in which it was decided that the period during which the body of a Hindu remains *impure* after the death of a relative, is determined by the usage of the family, the Sastras themselves being divided, some prescribing a uniform period of ten days for all the castes, others appointing different periods for the different castes. As this did not appear to be a satisfactory solution of the problem, some of the leading members of the Hindu community, Babù Harischandra * among their number, referred the matter to my friend Pandit Rama Misra Sàstri, who after carefully going over the various works on Hindú law, has compiled the book now laid before the public.

As the question of *impurity* does not appear to be of any interest to any body, who is not a Hindu, some apology is needed for the publication of the English version. The rules concerning *impurity* are very important from a legal point of view. In the Hindu Society the number of sub-castes is immense, and the classification is very imperfect. The rules of succession, in more than one case being different for different castes, if the members of every such sub-caste observed the rules of *impurity* of its origin, we should find no difficulty in determining the rules of succession to which they are, or ought to be subject.

B. S. R.—

* On account of his poetical genius and generosity the gentleman is termed by his countrymen the "Moon of India."

THE SUDDHI SARVASWAM

The Sastras prescribe different periods of *impurity* for different castes. On the death of a near relative, a Brahmana remains impure for 10 days, a Kshatriya for 12, a Vaisya for 15, and a Sudra for 30. On this point all the great lawgivers are unanimously agreed. Among their number we may mention Manu, Yajnavalkya, Atri, Samvarta, Goutama, Angiras, Daksha, Vasishtha, Devala, Parasara, Satatapa, Yama, Sankha-Likhita and others. In none of the 18 Smritis, do we ever find a mention of the rule; that the many castes have in any case whatever, one and the same period prescribed for them. Besides these law-books, we find the same fact mentioned in the Puranas, such as the Vishnupurana and the Garudapurana. Moreover Parasara, whose book was written especially for the kali-yuga, and whose injunctions ought, therefore, to be implicitly obeyed in this age, after the words अत:··· which mean "and now we will describe the duties of of a *grihastha* in the kali-yuga" has the following verse, क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्य: पञ्चदशाहकै: । शूद्र: शुध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥

" A Kshatriya becomes pure after twelve days, a Vaisya after fifteen and a Sudra after thirty; (*lit*: a month), so Parasara says. "

Many other Rishis, after laying down the same rule, remark शुद्धिर्भवति नान्तरा " and no purification is possible in periods less than those already mentioned. "

The periods, however, in spite of the dictum just quoted, can be reduced to some extent, in cases of emergency.

For Daksha says; स्वस्थकाले त्विदं सर्वमाशौचं परिकीर्त्तितम्। आपन्नतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥

" These periods of *impurity* are for times of ease. In cases of distress however, there is no *impurity*." This implies that the period of *impurity* can be reduced. As the word आपत् (which I have translated by the word *distress*) is very wide in its signification, the true import of it in this passage must be determined. Many people think that the kali-yuga of its own force, is the greatest of all calamities, that can befal man. But this argument to prove the applicability of the rule, for the purpose of reducing the period of *impurity*, has no leg to stand on; in as much as Parasara's book was written especially for the kali-yuga. Should, however, we attach any weight to the argument, we would be reduced to the necessity of assuming not only the uselessness, but the falsehood of the dicta of the great lawgiver of this age. The true import of the word appears to be प्रकृतकर्मानुष्ठानौपयिकस्वास्थ्यव्यापादकावस्था, "The disability of performing the duties prescribed." In my humble opinion this disability can arise from only two causes, the first of which is prohibition on the part of the Government, and the second, illness of the man who is to perform. If it were the reign of Aurangzeb, we might have had some excuse to say that the performance of our religious duties has any hindrance. Under the benign rule of Her Gracious Majesty the Empress of India, however, I am not sure if there is any man in his right senses, who will ever think of making such a preposterous statement. The second meaning only, has, therefore, any force in these days.

Not only is Parasara so strict in enforcing the obser-

vance of the rules, but Harita lays down the penalty of breaking them. He says, दशाह एव विप्रस्य सपिण्ड-मरणे सति । कालान्तराणि कुर्वाणः कलौ भवति किल्बिषी ॥

"For a Brahmana, on the death of a Sapinda, ten days' *impurity* is prescribed. If any one observes for a shorter period, he is a sinner in the kali-yuga"

When we consider how leniently the Brahmanas are treated by the Sastras in other respects, and how strictly the rule is laid down here for them, we are shut up to the conclusion, that Kshatriyas and Vaisyas have no other remedy but to obey implicitly the ceremonial prescribed for them.

In my opinion all I have said is enough to show, that the under the provisionsof the Hindu Law, men of different castes remain *impure* for different times; yet I am astonished to find many people presumptuously making the assertion that the practice of keeping the *impurity* for a uniform period, is warranted by the authority of the Garudapurana

The reason of this appears to be, that some people cannot distinguish the various kinds of Sanskrit in its various stages of development, and hence find it impossible to mark the difference between a genuine Purana and a modern forgery. This requires a knowledge of the development of the grammar of a language—a science which can only be throughly comprehended by a competent English scholar. * The printed edition, now sold in the market, in most unmistakeable terms, declares itself to be the

* I am sure this deficiency in our Pandits will be made up by the restablishment of the Anglo Sanskrit Department of the Benares College under the auspices of our present Lieutenant Governer Sir A. C. Lyall.

compilation of one Pandit NaunidhRam, under the auspices of Rajah ShardoolSingh of Jhunjhunanagar. In the face of this declaration to assert that the book in the work of Vyasa, proves either the ignorance or the dishonesty of pandits, who under the name of Sri Garuda are bent on misleading the nation, and thereby accelarating the downfall of the religious society. I have in my possession the oldest and the most reliable copy of Garudapurana in Benares, and no trace of the verse mentioned above is any where to be found in it. On the other hand it lays down in plain terms different periods of *impurity* for different castes.

It has however been urged that the time of Sapindikaran for all the castes is the twelvth day after the death of the relative, and as Sapindikaran can only be possible after the period of *impurity*, it therefore follows that uniform period of ten days is prescribed by the Sastras. This however is not correct. Raghunandan Bhattacharya, the great lawyer of Bengal, and the authors of Samvatsarkaumadi and Tithitatwa, who have quoted the authority of the Garudapurana, affirm that the Sapindikaran ought to be performed a year after the death, uuder the provisions of the same holy book. Besides in the case of the verses of Puranas, I am sure every body will admit, that a verse often quoted by old lawgivers, has greater claims to be called genuine than one of a contradictory signification not quoted by them. Thus it appears that the verse authorizing the performance of the Sapindikaran on the 12th day, is a modern interpolation.

As for the dictum of Vyaghra Smriti, authorizing the observance of the same period for Sapindikaran, I have only to say that if any Sanskrit Scholar were to

study it carefully, he will find that Vyaghra Rishi intends to insinuate, that his rule applies to periods of distress or disability only.

Moreover all the Rishis, and compilers of digests are unanimous in declaring that the time of performing the Sapindikaran is the first anniversary of the death of the relative. The advocate of the uniform period has now one hold left, and that he says is the dictum of Angiras. For those who are curious to know it, I shall quote the verse at length. — सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतके तथा । दशाहाच्छुद्धिरेतेषामिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ which appears to mean "Of all the castes in case of death, the purification takes place after ten days; so says Satatapa." This clearly shows that Angiras has the authority of Satatapa for it. It is to be marked however, that the verse is not to be met with in the copies of the codes of Angiras and Satatapa now available; in both of these books we find the statement that different periods are appointed for different castes. I shall not however question the genuineness of the verse, as it has been often quoted by the compilers of digests. Now it is the saying of Katyayana that विरोधो यत्र वाक्यानां प्रामाण्यं तत्र भूयसाम् । "where there is a difference, those dicta are to be considered authoritative, which outnumber the others." Here this single verse contradicts all the Rishis together. Hence we are obliged to infer that the import of this verse, is different from what it seems to be, and that the contradiction is only apparent.

One of the oldest and most reliable authorities on Hindu Law, Apararka, clearly puts down the correct signification of the verse. He says that, as in the former ages the marriage of a Brahman with females of all

castes was allowed, the children of these other females could observe the rules of *impurity* to which their father was subject. Here the four castes have a uniform period for them, and it is on the same account that Manu says;

सर्वेष्युत्तमवर्णानामाशौचंकुर्य्युरादितः । उद्वर्णविधिदृष्टेनस्वा-त्वाशौचंस्वयोनिषु ॥

which means“ Where a female of a low caste is married to a male of a higher caste, her progeny will observe the period of impurity of that high caste” — and this corresponds with the interpretation of Apararka just mentioned; and it appears to be the intention of the author. When we consider how particular our law givers are in their use of the lauguage and how almost no superfluous words, nay even those allowed in Prosody, are used by them, in books on law, no Sanscrit scholar need be told, that if the correctness of this signification be called in question, the word एतेषाम् will have no force in it. In this interpretation of the verse, Apararka is followed by other lawyers of India.

With great deference to the opinions of these masterminds, I beg to say, that to me, this meaning does not appear to be quite up to the mark; for the word Varna in this verse cannot include Varnasankara which the children of such marriages must necessarily be. I am inclined to think that this verse, refers to the *impurity* to which the females of the four castes, married to a Brahmana were subject, on the birth or death of their children. The word एतेषाम् therefore means एतेषाम् दारानाम्— for although the children are Varna-Sankara the females remain in their own Varnas, even after their marriage with a Brahmana. This rendering of the

passage is countenanced by the following verse of the Kurmapurana शूद्रविट्क्षत्रियाणान्तु ब्राह्मणे संस्थिते सति । दशरात्रेण शुद्धिःस्यादित्याह कमलोद्भवः which means "Where persons of the other three Varnas are Sapindas to a Brahmana, on the death of that Brahmana their bodies remain impure for ten days." This is further supported by Jabala, Vishnu and others. A glance at the Sanscrit Vyavastha will satisfy the curious inquirer on this point. The question of the propriety of performing the Adyasraddha on the eleventh day, when the giver is purified, sometimes after, has been raised by some, after all their arguments, in favour of the uniformity system, have been exhausted. About this I have only to say that it is not to the point. Besides this practice is allowed by such lawgivers as Vasishtha, Paithinasi, Sankha and Laugakshi, and therefore can never be called in question.

Nor is this practice different from what the Gauda law-books lay down, as some have alleged. This appears to be a mistake, arising from an ignorance of those books; for Apararka, Madanaratna, Divodasa Misriya and Mitakshara which is the standard law book of the Gaudas (Benares school) used even in the Government courts, clearly lay down the same rules about the offering of the first cake. Some modern writers of Mithila, by a subterfuge of the dicta of the Rishis I have mentioned, try to prove, that the performance of the Adyasraddha, on the eleventh day is improper. Regarding this let it suffice to say that they can be no authority in the face of the injunctions of the lawgivers and the compilers named above.

P. S. Ram Misra Sastri

President Literary Society
of Benares Pandits

Benares
17th April 1884

सीताराम भट्ट	रामलाल पण्डित
भीकूपन्तशेष	योगेशपण्डित
राजारामसोनी	कैलासचन्द्रभट्टाचार्य्य
वैजनाथदीक्षित	कुवेरपतिपण्डित
अमृतशास्त्री	राममिश्रशास्त्री
रामाचार्य्य	तुलारामपण्डित
राजारामशास्त्री	गणपतिपण्डित
चिन्तामणिपाठक	वलदेवज्योतिर्वित्
हरिकृष्णव्यास	जीवनमुक्तमनोहर झा
चतुर्भुजशास्त्री	फणिमिश्र झा
हाकिमदत्तपण्डित	शिवनन्दन झा
शोभारामशास्त्री	मदनझा
परमेश्वरीदत्तव्यास	विहारीलाल झा
युगलकिशोरव्यास	लक्ष्मीकान्त झा
हरनाथभट्टाचार्य्य	भागवताचार्य्य
हरिनाथभट्टाचार्य्य	वापूशास्त्री
जयनारायणभट्टाचार्य्य	भय्याशास्त्री
भगवतीचरणभट्टाचार्य्य	रघुनाथशास्त्री
हरिवल्लभपण्डित	गौरीनाथशास्त्री
वद्रीनारायणपण्डित	रामशास्त्री

ठाकुरदत्तपण्डित	देवीसहायपण्डित
भागीरथपण्डित	राजाजीज्योतिर्वित्
हरदत्तपण्डित	रामलालगौड
गणेशदत्तपण्डित	रघुनाथपण्डित
अम्बिकादत्तसाहित्याचार्य्य	सुरजनपण्डित
कृष्णशास्त्रीउत्कल:	नन्दलालपण्डित
दिन्नारामपण्डित	मन्नाजीपुरोहित
विजयानन्दपण्डित	गणेशरामव्यास
मदनमोहनपाठक	पूर्णानन्दउत्कल:
जगन्नाथपण्डित	रामेश्वरज्योतिर्वित्
व्रजलालपण्डित	व्रजमोहनपाठक
नारायणपण्डित	गोविन्दप्रसादपण्डित
गोपालदत्तपण्डित	कुलपतिमिश्राग्निहोत्र:
भूदेवभट्टाचार्य्याणाम्	बालमुकन्दगौड
रामप्रतापविदुव:	रामकृष्णपण्डित
गोपालनैयायिक	दीपनरायणपण्डित
रामरतननैयायिक	दिलेरामपण्डित
धरणीधरपण्डित	हरिहरउत्कल:
लक्ष्मीनारायणपण्डित	रघुवंशीपण्डित

विज्ञापन ॥

हम लोगों ने वेद वेदान्त न्याय सांख्य और मीमांसा साहित्यादि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों की सुप्रसिद्धि करने की वासना किई है। और आशा है कि इस महदनुष्ठान में देशहितैषी विद्यानुरागी धनी गुणी राजा महाराज लोग भी हम लोगों को समुचित उत्साह दान करेंगे।

सम्प्रति निम्न लिखित पुस्तक छप रही हैं

१ तर्कमञ्जरी (न्याय शास्त्र का ग्रन्थ) बृहत्तर्क प्रकाश व्याख्या सहित। इसका मूल्य ५) रु० परन्तु जो लोग इसका मूल्य अग्रिम भेजेंगे उन को २) रु० कमदेना पड़ेगा अर्थात् ३ रु०। २ नानार्थ मञ्जरी। ३ शिव स्तोत्र। ४ कारकोल्लास।

॥ अमरयन्त्रालय कार्य्याध्यक्ष

शुद्धि सर्व्वस्वम्।॥) एकाक्षर कोष।/) सङ्गीत माला ≠)

इन तीनो किताबें छपकर तैयार हैं जिनको लेना हो नीचे लिखे ठिकानों से मंगाय लेंय। गुदौलिया के सड़क पर गङ्गाराम दफ़्तरी के दुकान पर मीलैगी। और रामा पुरा अमरप्रेस में॥



लेना

गुदौलिया

दुकान पर मीलैगी। और रामा पुरा





पुस्तक ल
को पुस्तक न
दिनों का अर्थ

०००.११.१४।

गुदौ

दुकान पर मीलैगी। और ... पुरा

